शोधशौर्यम्

ISSN - 2581-6306

Peer Reviewed and Refereed
International
Scientific Research Journal

website : www.shisrrj.com

SHODHSHAURYAM
INTERNATIONAL SCIENTIFIC REFEREED
RESEARCH JOURNAL

Volume 6, Issue 4, July-August-2023

Email: editor@shisrrj.com, shisrrj@gmail.com

शोधशौर्यम्

Shodhshauryam

International Scientific Refereed Research Journal

[Frequency: Bimonthly]

ISSN : 2581-6306

Volume 6, Issue 4, July-August-2023

International Peer Reviewed, Open Access Journal
Bimonthly Publication

Published By
Technoscience Academy

Website URL : www.technoscienceacademy.com

Advisory / Editorial Board

Advisory Board

- **Prof. Radhavallabh Tripathi**
  Ex-Vice Chancellor, Central Sanskrit University, New Delhi, India
- **Prof. B. K. Dalai**
  Director and Head. (Ex) Centre of Advanced Study in Sanskrit. S P Pune University, Pune, Maharashtra, India
- **Prof. Divakar Mohanty**
  Professor in Sanskrit, Centre of Advanced Study in Sanskrit (C. A. S. S.), Savitribai Phule Pune University, Ganeshkhind, Pune, Maharashtra, India
- **Prof. Ramakant Pandey**
  Director, Central Sanskrit University,Bhopal Campus.Madhya Pradesh, India
- **Prof. Parag B Joshi**
  Professor & OsD to VC, Department of Sanskrit Language & Literature, HoD, Modern Language Department, Coordinator, IQAC, Director, School of Shastric Learning, Coordinator, research Course, KKSU, Ramtek, Nagpur, India
- **Prof. Sukanta Kumar Senapati**
  Director, C.S.U., Eklavya Campus, Agartala, Central Sanskrit University,Janakpuri, New Delhi, India
- **Prof. Sadashiv Kumar Dwivedi**
  Professor, Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Coordinator, Bharat adhyayan kendra, Banaras Hindu University, Varanasi Uttar Pradesh, India
- **Prof. Dinesh P Rasal**
  Professor, Department of Sanskrit and Prakrit, Savitribai Phule Pune University, Pune, Maharashtra, India
- **Prof. Kaushalendra Pandey**
  Head of Department, Department of Sahitya, Faculty of Sanskrit Vidya Dharma Vigyan, Banaras Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh, India
- **Prof. Manoj Mishra**
  Professor, Head of the Department, Department of Vedas, Central Sanskrit University, Ganganath Jha Campus, Azad Park, Prayagraj, Uttar Pradesh, India

- **Prof. Ramnarayan Dwivedi**
  Head, Department of Vyakarana Faculty of Sanskrit Vidya Dharma Vigyan, BHU, Varanasi, Uttar Pradesh, India
- **Prof. Ram Kishore Tripathi**
  Head, Department of Vedanta, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi, Uttar Pradesh, India
- **Dr. Pankaj Kumar Vyas**
  Associate Professor, Department- Vyakarana, National Sanskrit University (A central University), Tirupati, India

---

Editor-In-Chief

- **Dr. Raj Kumar**
  SST, Palamu, Jharkhand, India
  Email : editor@shisrrj.com

Associate Editor

- **Prof. Dr. H. M. Srivastava**
  Department of Mathematics and Statistics, University of Victoria, Victoria, British Columbia, Canada
- **Prof. Daya Shankar Tiwary**
  Department of Sanskrit, Delhi University, Delhi, India
- **Prof. Satyapal Singh**
  Department of Sanskrit, Delhi University, Delhi, India
- **Dr. Ashok Kumar Mishra**
  Assistant Professor (Vyakaran), S. D. Aadarsh Sanskrit College Ambala Cantt Haryana, India
- **Dr. Somanath Dash**
  Assistant Professor, Department of Research and Publications, National Sanskrit University, Tirupati, Andhra Pradesh, India

- **Dr. Raj Kumar Mishra**
  Assistant Professor, Department of Sahitya, Central Sanskrit University Vedavyas Campus Balahar Kangara Himachal Pradesh, India

---

Executive Editor

- **Dr. Sheshang D. Degadwala**
  Associate Professor & Head of Department, Department of Computer Engineering, Sigma University, Vadodara, Gujarat

---

Editors

- **Dr. Ekkurti Venkateswarlu**
  Assistant Professor in Education, Sri Lal bahadur Sashtri National Sanskrit University, (Central University), New Delhi, India
- **Rajesh Mondal**
  Department of Vyakarana, National Sanskrit University, Tirupati, Andhra Pradesh, India

---

Assistant Editors

- **Dr. Virendra Kumar Maurya**
  Assistant Professor- Sanskrit, Government P.G. College Alapur, Ambedkarnagar, Uttar Pradesh, India

---

International Editorial Board

- **Dr. Agus Purwanto, ST, MT**
  Assistant Professor, Pelita Harapan University Indonesia, Pelita Harapan University, Indonesia

- **Dr. Morve Roshan K**
  Lecturer, Teacher, Tutor, Volunteer, Haiku Poetess, Editor, Writer, and Translator
  Honorary Research Associate, Bangor University, United Kingdom

- **Vaibhav Sundriyal**
  Research Scientist, Old Dominion University Research Foundation, USA

- **Dr. Elsadig Gamaleldeen**
  Assistant Professor, Omdurman Ahlia University, Sudan

- **Frank Angelo Pacala**
  Samar State University, Samahang Pisika ng Pilipinas

- **Thabani Nyoni**
  Department of Economics Employers Confederation of Zimbabwe (EMCOZ) ,
  University of Zimbabwe, Zimbabwe

- **Md. Amir Hossain**
  IBAIS University/Uttara University, Dhaka, Bangladesh

- **Mahasin Gad Alla Mohamed**
  Assistant Professor, Kingdom Saudi Arabia, Jazan University, Faculty of Education - Female Section, Sabya

CONTENT

Sr. No	ARTICLE/PAPER	PAGE NO
1	**जाति-सूचक गालियों की अवधारणा** गोविन्द वर्मा	01-04
2	**Indian Diaspora and their Cultural Relations in Ethiopia** Niranjan Kumar Mistri	05-09
3	**वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना** डॉ. विजय कुमार शर्मा	10-15
4	**किशोरी छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य के संवेगात्मक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन** सपना शाही	16-22
5	**सत्यजित रे : साहित्यिक गरिमा की फिल्मों के महान सर्जक** सुन्दरम आनन्द	23-27
6	**Marginality in Japanese Society : Globalisation, Nojukusha, and Homelessness in Contemporary Japan** Arpan Banerjee	28-40
6	**Prevalence of Ixodid Ticks in Small Ruminants in and Around Jimma District** Mujahid Jewaro, Kufa Mustefa	41-51

Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 4
ISSN : 2581-6306 **doi :** https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

जाति-सूचक गालियों की अवधारणा

गोविन्द वर्मा
शोधार्थी ,जामिया मिल्लिया इस्लामिया , नई दिल्ली

Article Info
Publication Issue :
July-August-2023
Volume 6, Issue 4
Page Number : 01-04
Article History
Received : 01 July 2023
Published : 13 July 2023

शोधसारांश- भारतीय समाज में शादी आदि अवसरों पर गाली गीत (गारी गीत) गाने का प्रचलन है जब स्त्रियां पुरुषों को लक्ष्य करके गालियां देती हैं तब उनमें उनके माँ, बहन आदि की गालियां ही होती हैं लेकिन जब पुरुष नहीं होते हैं तब स्त्रियां आपस में गारी गीत गाती हैं।

मुख्य शब्द- भारतीय, समाज, शादी, गाली, गीत।

विश्व के लगभग सभी भाषा–बोलियों में गालियों का प्रचलन और प्रयोग खुले अथवा छिपे तौर पर सदियों से होता रहा है। गालियों के अगर उद्भव एवं विकास पर दृष्टि डालें तो बहुत ही चौंकाने वाले तथ्य सामने आते हैं। इन्हीं में से एक तथ्य यह है कि बोली अथवा भाषा के उद्भव और विकास के साथ ही गालियों का भी उद्भव एवं विकास होता रहा है। अलग–अलग समय में भाषा के शब्दकोश के साथ–साथ गालियों के भी शब्दकोश में वृद्धि हुई है। यहां पर हम जाति–सूचक गालियों की आम अवधारणाओं एवं समाज में उसके प्रचलन एवं सोच को समझने की कोशिश करेंगे।

विदित है कि किसी भी सभ्य समाज में गालियां सहज स्वीकार्य नहीं हैं। समाज में बहुत से व्यक्ति हमें गालियों का समर्थन करते हुए मिल जायेंगे और अपने तथ्य की पुष्टि के लिए नानाप्रकार के तर्क भी देंगे लेकिन जब आप उनसे पूछेंगे कि क्या आपके घर के अंदर इसप्रकार की शब्दावली प्रयोग में लायी जाती है तब वे अपनी बगलें झांकने लगते हैं। गालियों के वर्जना की बात हिंदी भाषा में सर्वप्रथम पत्रिकओं में उठायी गई। दिसम्बर 1909 ई॰ में जमाना पत्रिका में मुंशी प्रेमचंद का एक लेख 'गालियाँ' नाम से प्रकाशित हुआ था जिसमें गालियों के बारे में बहुत कटु कथन कहे गये "हरएक जाति का बोलचाल का ढंग उसकी नैतिक स्थिति का पता देता है। अगर इस दृष्टि से देखा जाये तो हिंदुस्तान सारी दुनिया की तमाम जातियों में सबसे नीचे नजर आयेगा। बोलचाल की गंभीरता और सुथरापन जाति की महानता और उसकी नैतिक पवित्रता को व्यक्त करती है और बदज़बानी नैतिक अंधकार और जाति के पतन का पक्का प्रमाण है। जितने गन्दे शब्द हमारी ज़बान से निकलते हैं शायद ही किसी सभ्य जाति की जबान से निकलते हों।"[1]इस समय तक हिंदी साहित्य में अपशब्दों का प्रयोग नाम मात्र होता था इसलिए प्रेमचंद ने साहित्य की आलोचना नहीं की है। जबकि अखबारों में अपशब्दों या गालियों खासकर लक्षणा और व्यंजना के रूप में दी जाने वाली गालियों की खबर उन्होंने ली है। 'गालियां' लेख में प्रेमचंद ने लिखा है– "लखनऊ में एक जिंदादिल अख़बार है। वह भी होली में मस्त हो जाता है और मोटे–मोटे अक्षरों में पुकारता है–

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

आई होली आई होली, हमने अपनी धोती खोली

यह इस जिंदादिल अख़बार की जिंदादिल है! वह सभ्य और सुसंस्कृत रुचि का समर्थक समझा जाता है। लेकिन जिस देश में गालियों का ऐसा रिवाज हो वहाँ इसी का सुथरे मजाक में शुमार है। कुछ हिंदी अखबारों की जिन्दादिली उन दिनों अथाह हो जाती है। निरंतर कबीरें छपती हैं और अधिकांश कबीरें शब्दों के अलंकार के पर्दे में गालियों से भरी होती हैं।"[2]कुल मिलाकर अगर देखा जाय तो प्रेमचंद गालियों के पक्षधर नहीं थे, न ही साहित्य में न ही समाज में। प्रेमचंद के कहानियों में गालियों का प्रयोग नहीं हुआ है परन्तु अपने उपन्यासों खासकर बाद के यथार्थवादी उपन्यासों में गालियों के प्रयोग से नहीं बच पाए हैं।

जातिसूचक गालियों का जन्म जाति के जन्म के साथ ही माना जा सकता है क्योंकि जाति का उद्भव ही मनुष्य ने कर्म के हिसाब से किया है और सभी जातियों को बराबर नहीं माना गया है, तो श्रेष्ठता-हीनता का बोध यहीं से शुरू हो जाता है। यह तो सभी जानते हैं कि चातुष्वर्ण्य समाज की कल्पना का आदि स्रोत ऋग्वेद के 10वें मंडल में वर्णित पुरुषसूक्त है, जिसके अनुसार चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदिपुरुष ब्रह्मा के क्रमश: मुख, भुजाओं, जंघाओं और चरणों से उत्पन्न हुये। अत: जातियों के प्राचीनता के बारे में आप इसी बात से जान सकते हैं कि सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद में ही चार वर्णों के बारे में बताया गया है। जातियों के दुष्परिणामों एवं अप्रासंगिकता के कारण ही भारतीय समाज में तमाम आन्दोलन एवं सम्प्रदायों का जन्म हुआ जिनमें जैन एवं बौद्ध धर्म प्रमुख हैं, इस प्रकार के आंदोलनों से ब्राह्मणवादी अथवा वैदिक व्यवस्था हिलती दिखाई देने लगी यहां तक कि जैन एवं बौद्ध धर्मों को राजाश्रय भी मिलने लगा जिसके कारण इन धर्मों, विशेष तौर पर बौद्ध धर्म हिन्दुस्तान की सीमा से बाहर अनेकानेक देशों में अपने प्रभाव को विपुलता से प्रस्थापित कर रहा था। जिससे ब्राह्मण धर्म को मानने वाले एक अवसर के तलाश में थे और वह अवसर जल्द ही मिला जब भारत की सत्ता पुन: हिन्दू धर्मानुयायी राजवंशों के हाथ में आई। मौर्य वंश के बाद पुष्यमित्र शुंग ने शुंग वंश(ब्राह्मण साम्राज्य) की स्थापना की इसी के कार्यकाल में स्मृति ग्रंथों में सबसे प्राचीन एवं प्रमाणिक मनुस्मृति की रचना हुई। जिसमें हिन्दू धर्म से संबंधित कर्मकाण्ड, पाखण्ड, जाति-पांति, रीति-रिवाज आदि विधि-विधानों का विस्तार से उल्लेख है और इन विधि-विधानों के न मानने पर कठोर दंड के प्रावधान भी बनाये गये हैं जो कमोवेश आज भी समाज में व्याप्त हैं।मनुस्मृति में ही इन चार वर्णों के अतिरिक्त अन्य जातियों का सविस्तार वर्णन है जैसे कि शुद्र वर्ण के पुरुष और ब्राह्मण वर्ण की कन्या के साथ विवाह करने के पश्चात उत्पन्न संतान को चंडाल कहा जायेगा और उसका पेशा मुर्दा को जलाने का होगा उसका निवास स्थान नगर से बाहर श्मशान में रहेगा। कुत्ता, वेश्या और चंडाल का निवास स्थान प्राय: श्मशान ही होते थे। इनका नगर में प्रवेश वर्जित माना जाता था परन्तु मनु स्मृति में इन नियमों के उल्लघंन पर कड़े दण्ड का प्रावधान बनाया गया। इसी प्रकार किसी शुद्र का धार्मिक ग्रंथों के श्लोकों को सुन लेने पर कान में पिघले हुए कांच को डालने और श्लोक का उच्चारण करने पर जिह्वा को काटने के नियम कालान्तर में बनाये गये इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे दण्डों का प्रचलन समाज में स्वत: प्रचलन में आ गया जिसका किसी भी धार्मिक ग्रन्थ में उल्लेख भी नहीं है। उनको केवल उच्च वर्गों के अत्याचार के कारण समाज में ढोया जा रहा था। खैर!

जातियों और वर्णों पर आधारित गालियों पर बात करने से पहले गालियों के बनने की प्रक्रिया पर कुछ विचार किया जा सकता है वस्तुत: गालियां शब्द विस्तार या शब्द लोप के कारण बनी है। जैसे- दहीजरा (दाढ़ीजार) पूर्वांचल में औरतों द्वारा दी जाने वाली गाली है, मोगल (मुगल) गाली भी अवध में जाती है जोकि मुगल शब्द का बिगड़ा रूप है।वैश्या शब्द की उत्पति पर भगवत शरण उपाध्याय कहते हैं कि -"विश से दो हुए -'वैश्य'और 'वेश्या'। पुरोहित-राजन्यों अथवा, अधिक यथार्थत:, ब्राह्मण-क्षत्रियों से इतर विशों के वंशधर वैश्य हुए और विशों की समान रूप से भुक्ता नारी वेश्या हुई। वेश्या-

जो कालान्तर में पण्य-स्त्री (पैसे से वस्तु रूप में खरीदी जाने वाली), रूपाजीवा, वारांगना आदि कहलाई।"[3]यहां पर गाली वैश्य वर्ण पर बनी है वस्तु का व्यापार करने वाला वैश्य और देह,रूप का व्यापार करने वाली वैश्या, यह समाज के किसी भी स्त्री को बेज्जत, नीचा दिखाने के लिए कदाचित सबसे पहले जबान पर आती है। यहां तक कि धार्मिक कुरीतियों पर किस तरह से गालियां बनी है उसका एक उदाहरण- अथर्ववेद में एक धार्मिक अनुष्ठान में यज्ञ के दौरान राजा की मुख्य पत्नी(पटरानी) को घोड़े के साथ सम्भोग करने का उल्लेख है। इसका जिक्र भागवत शरण उपाध्याय भी करते हैं- "नारी मनुष्य के साथ कुछ भी कर सकती है, परन्तु पशु के साथ-अश्व के साथ...

सायण-महीधर कैसे उसकी व्याख्या कर सके, ऐतरेय ब्राह्मण में कैसे उसे सम्मिलित किया जा सका? जनमेजय का वह अश्वमेध... पुरोहित तुरकावषेय के अश्व का वह आक्रमण...

हाय, किसे मैं गाली दूं- अश्वमेधययियों को या ऋत्विक पुरोहितों को?"[4]

उपरोक्त अनुष्ठान के कारण ही आज देश के विभिन्न हिस्सों में 'घोड़े का सार(साला)' गाली प्रचलित है, यही नहीं अब तो स्त्रियों को भी कहा जाता है घोड़ी बना दूंगा यह गाली तो महानगरीय कल्चर में ज्यादा प्रचलित है।

ज्ञातव्य है कि भारत के आदिवासियों(शूद्रों) के इष्टदेव शिव थे और यहां के मूलनिवासी लिंगपूजक थे। इस पर आर्यों ने उन्हें बेज्जत करने के लिए इसे ही गाली बना दिया। भगवत शरण उपाध्याय इसके बारे में कहते हैं- "मुझे कृष्ण, दास आदि कह कर सम्बोधित करते, मृध्रवाक् और शिश्नदेवा: कह कर गाली देते, अदेवयु, अयज्वन कह कर धिक्कारते, लांक्षित करते।"[5]

इसके अतिरिक्त तमाम ऐसे शब्द हैं जिनसे गालियां बनी हैं। जिनका उल्लेख विभिन्न ग्रंथों में मिलता है। मैं यहां जोर देकर कहता हूं कि भारत का कदाचित ही कोई पौराणिक अथवा धार्मिक ग्रन्थ हो जिसमें गाली का उल्लेख न हो। केवल रामचरितमानस के अरण्य काण्ड में लगभग पन्द्रह प्रकार की गालियां हैं।

जातिसूचक गालियों का इतिहास कम पुराना नहीं है महाभारत में कर्ण को बार-बार सूत-पुत्र कहकर भरी सभाओं में बेज्जत किये जाने का प्रसंग सर्वविदित है, यहां तक कि दरबार आदि स्थलों पर विद्वानों को यह ज्ञात होता है कि कर्ण कुंती का ज्येष्ठ पुत्र है तब भी किसी को यह सत्य स्वीकार करने का साहस नहीं हुआ और वह अपमानित होता रहा। यदि इस बात को छोड़ भी दें तो व्यक्ति का वर्ण उसके कर्म से निर्धारित होता है, इस प्रकार कर्ण कर्म से क्षत्रिय ही था परन्तु इस बात से भी उसे नकारा गया और वह मात्र अपनी जाति के कारण अपमान के घूंट पीता रहा।

इसीप्रकार क्रौंच पक्षी के वध पर वाल्मीकि द्वारा निषाद को शाप देने का प्रसंग ज्ञात ही है जिसके विषय में कुबेरनाथ राय अपने एक निबंध 'महाकवि की तर्जनी' में लिखते हैं-"अवश्य 'निषाद' से उस ब्राह्मण का तात्पर्य किसी जाति या नस्ल से नहीं था, बल्कि शील और आचार से था। ब्राह्मणों की पुरानी भाषा में 'निषाद' और 'आर्य' शब्द जातिवाचक नहीं, शीलवाचक थे, यद्यपि बाद के ब्राह्मणों ने स्वार्थवश शील की बात को पृष्ठभूमि में कर दिया। उस ब्राह्मण का धिक्कार-वाक्य या तो उस निषाद-विशेष के लिए व्यक्तिगत तौर पर था, अथवा उन सबके लिए था जो इस प्रकार के क्रूर कर्म भविष्य में करेंगे।"[6] यहाँ पर यदि मान लिया जाये तो भी क्या इस प्रकार किसी निरीह प्राणी का वध करने वाले को निषाद कहकर उसे अधम माना गया। विदित है कि वाल्मीकि ने ही राम द्वारा शम्बूक के वध को क्या अधम माना है, सुधि पाठक के पास इस सवाल का जबाव खुद है।

दरअसल पेशे, जाति पर आधारित गालियां भारत में पहले से विद्यमान थीं ही लेकिन अंग्रेजों के आने के बाद और औद्योगिक युग के कारण जब समाज के विभिन्न वर्गों के पारम्परिक व्यवसाय नष्ट होने लगे तब इनके शोषण में वृद्धि हुई और

इसके पेशे और जाति को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। जैसे कि जुलाहा, धुनिया, अहीर, गड़ेरिया, लोहार, बढ़ई आदि जातियों का सम्मान होता था अब इन जातियों पर भी गालियां बनने लगी।

अहीर, गड़ेरिया, कुर्मी चोर

धर सारे(साले) क टंगरी तोर।

इसी प्रकार चमार, चमाइन, कुजड़ीन, आदि गालियां हैं।उत्तर भारत में प्रमुख रूप से पाई जाने वाली एक चिड़िया है जिसे 'जंगल बब्ब्लेर' गांव में 'पैपा' कहते हैं, यह पक्षी प्राय: सात-आठ के समूह में रहती हैं और शोर भी बहुत मचाती हैं इस कारण इसे अवध क्षेत्र में 'चमईनिया चिड़िया' या 'धुनियाईन' कहा जाता है दोनों ही शब्द भारतीय समाज में निचले पायदान पर आने वाली दो जातियों के नाम हैं। भारतीय समाज में जातियों पर आधारित बहुत से मुहावरे और लोकोक्ति बनी हैं।

करिया बाभन गोर चमार भूअर ठाकुर डेढ़ सोनार

यहां पर यह बता देना जरूरी है कि गालियां केवल निम्न जातियों को लक्षित करके नहीं बनी हैं अपितु लक्षणा और व्यंजना रूप में वे तथाकथित उच्च जातियों को भी दी जाती हैं। उपरोक्त लोकोक्ति में केवल जाति के वर्णन मात्र से व्यक्ति के माता के सम्बन्ध को तथा अमुक व्यक्ति के चरित्र को रेखांकित कर दिया गया है। जबकि इस पर उस व्यक्ति का कोई वश नहीं है।

भारतीय समाज में शादी आदि अवसरों पर गाली गीत (गारी गीत) गाने का प्रचलन है जब स्त्रियां पुरुषों को लक्ष्य करके गालियां देती हैं तब उनमें उनके माँ,बहन आदि की गालियां ही होती हैं लेकिन जब पुरुष नहीं होते हैं तब स्त्रियां आपस में गारी गीत गाती हैं। ऐसे अवसरों पर भाभियां अपनी ननद को गाली देती हैं।

(स्त्री नाम)... चढ़ी लम्बे खजूर,

छुट गया लहंगा (गाली)... मजूर।

इस प्रकार की तमाम गालियां लोक में प्रचलित हैं और इसे चटकारे लेकर गाया भी जाता है।

कुल मिलाकर कहा जाय तो गालियां किसी व्यक्ति के पौरुष को ललकारने या रेखांकित करने उसे नीचा दिखाने आदि के रूप में समाज में बहुत गहरे व्याप्त हैं। किसी भी सभ्य समाज में गालियों की स्वीकार्यता नहीं हैं।

1. प्रेमचंद, (2003). प्रेमचंद के विचार(भाग-3). नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान. पृष्ठ संख्या-148.
2. वही. पृष्ठ संख्या- 153.
3. उपाध्याय, भगवत शरण (2016), खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली-110055, ISBN: 81-7007-196-8, पृष्ठ- 61
4. उपाध्याय, भगवत शरण (2016), खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली-110055, ISBN: 81-7007-196-8, पृष्ठ- 17
5. उपाध्याय, भगवत शरण (2016), खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली-110055, ISBN: 81-7007-196-8, पृष्ठ- 79
6. शर्मा, अंजुम (सं), (2021), निबंध-मान, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी-17, जगतपुरी, नई दिल्ली-110051, ISBN: 978-81-8361-998-1

Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 4
ISSN : 2581-6306 **doi :** https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

Indian Diaspora and their Cultural Relations in Ethiopia

Niranjan Kumar Mistri
Ph.D. Research Scholar, Center for African Studies, School of International Studies, JNU

Article Info
Publication Issue :
July-August-2023
Volume 6, Issue 4
Page Number : 05-09
Article History
Received : 01 July 2023
Published : 13 July 2023

Abstract - The term Diaspora refers to the people or ethnic populations who have been forced or induced to leave their homelands, becoming dispersed and spreading their culture throughout the world. The Indian Diaspora, which includes people of Indian Origin and Non-Resident Indians is a heterogeneous community globally, just like India itself. Due to this diversity, engaging and connecting with them requires different and distinct approaches. The common thread that binds them together is the idea of India and its inherent values. Historically, the dispersion of people from India and the formation of Indian Diaspora communities have resulted from different waves of migration, spanning hundreds of years.

However, the Indian Diaspora in Ethiopia is comparatively smaller, with a population of less than 10000. Nevertheless, they have played a significant role in fostering India- Ethiopian cultural relations. The Indian diaspora has substantially impacted the culture and economies of Ethiopia and has earned a place of pride among the Ethiopian people. Within Ethiopia, the Indian Diaspora is involved in various professions such as entrepreneurs, traders, academicians, teachers, trainers, engineers, workers, managers, and administrators. Consequently, they play a leading role in the technological revolution taking place in Ethiopia. The contributions of the Indian Diaspora in various fields have greatly influenced India's image abroad. This paper primarily focuses on the cultural relations of the Indian Diaspora in Ethiopia through various platforms with locals. It also examines the programs and policies implemented by the Ethiopian Government to support the cultural relations of the Indian Diaspora in the country.

Keywords : Diaspora, Heterogeneous, Migration, Colonialism, mercantilism, Culture

Indian Diaspora and their Cultural Relations in Ethiopia - In the global era, cultural amalgamation has encountered a boost from the existing international institutions. In these circumstances, the study of diaspora acquires important space and becomes significant. In terms of language, identity, and status, any diaspora is very diversified, and its cultural, socio-economic, and political roles, along with the level of integration and assimilation, becomes crucial, as these cultural connections between two countries are preserved and protected. But today we see that, despite playing an important role in every corner of the world, diasporic members are viewed with a lot of speculation and reservation. In the African continent, there are around

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

three million people of Indian origin. A large number of Indians have settled in Africa after migrating in phases (Sinha 2019). In between 8000-10000, diaspora is living in Ethiopia. Considering diaspora as an important attribute of the connection between domestic and Ethiopian cultures. This has added new dimensions to the India-Ethiopia relationship.

The term diaspora comes from the Greek words dia (over or through) and sperio (dispersal or sowing). Diaspora implies dispersion or scattering in Greek. In the case of the Indian diaspora, India is the shared ancestral country from which individuals moved to various areas of the world for various reasons, voluntarily or involuntarily. As a result of such migration, the diaspora was founded (Lal 2007: 14-18). V.S. Sheth defines diaspora as "a scattering of people with a common origin, background, and beliefs" (Sheth 2003: 105). Transnational links and contacts have grown in importance as states' interdependence has grown. "Diaspora is a Greek term for a nation or a part of a nation separated from the rest of the nation," according to the Encyclopaedia of Social Sciences. The term 'diaspora' mainly refers to Jewish people who live outside of Palestine. The relationships maintained by the diaspora are symbolic. For academics, the term "diaspora" encompasses a variety of groups, including immigrants, guest workers, ethnic and racial minorities, refugees, expatriates, and travellers. Diasporas can form as a result of voluntary or forced migration, mass exile, or the movement of economically disadvantaged groups to other countries. Recent changes in the global political and economic order have resulted in large-scale population movements in practically every region (Sinha 2019).

Implications for India because of the diasporic community's link with the motherland, there is a chance of their repatriation from the nation of their adoption. Thus, migration gave rise to the diaspora. It is also obvious that the diaspora are ethnic minority groups who live in host nations but have significant emotional, sentimental, and material ties to their places of origin (Sheffer 1986: 3). The term has since been broadened to include any population that has migrated from its home nation and established itself in a foreign land. They selectively incorporate and synthesise themselves with their ancestors' roots and sense of history. Migration is a crucial driver of historical change in a globalising world when a diasporic population assimilates, acculturates into its host society, and tends to lose connection and ties with its land of origin (Gupta 2003: 2). As a result, the diaspora plays an important role in the establishment of ethnic identity, the moulding of ethnic relations, and the reconstruction of societies. They provide a comprehensive framework for analysing cultural changes and are consequently gaining importance in current history.

The Indian Diaspora, which includes people of Indian origin and non-resident Indians, is a heterogeneous community globally, just like India itself. Due to this diversity, engaging and connecting with them requires different and distinct approaches. The common thread that binds them together is the idea of India and its inherent values. Historically, the dispersion of people from India and the formation of Indian Diaspora communities have resulted from different waves of migration, spanning hundreds of years. These migrations were driven by a variety of reasons, including slavery during mercantilism, indentured labor under colonialism, and guest worker programmes in post-colonial times.

In numerous ways, the Indian diaspora influenced Ethiopian life. They had an impact on food, clothing, dance, music, the arts, and architecture. In Ethiopia, there is a huge demand for Indian cuisine. Ethiopians have become well-known for their love of Indian cuisine. Textiles of Indian origin have had a tremendous impact on Ethiopian life and culture in a variety of ways. According to a recent study, cotton production began in the northern region of the Indian subcontinent and spread to southwestern Arabia, from where it was taken across the Red Sea to Nubia and Abyssinia during the first millennium B.C. The art of weaving, as well as the process for building the loom, originated in India. Michael Gervers, a Canadian academic, contends that an old pit-treadle cotton loom, initially invented in India and now widely used in Ethiopia, may have reached there by the same route as cotton itself. According to Gervers, the specific date of the cultural and technological shift associated with cotton weaving is unknown, though evidence points to the Middle Ages, if not earlier (Gervers 1983:39). The pit-treadle loom has long been abandoned in India, but while touring India, I came upon a 17th or 18th-century portrayal of Baba Kabir Das, a 14th-century Punjabi saint and scholar, weaving on such a loom at the Khuda Bakhsh Oriental Public Library in Patna. Throughout the years, Indian cotton and silk made their way to the Horn of Africa's interior. Although there is evidence that "cloth for making dresses" was exported as early as the sixth century at a location near the present city of Bombay (Pankhurst 1974: 213), specific information recorded by European explorers came considerably later. Before the Portuguese conquered the Indian Ocean, they observed that more than twenty varieties of cotton cloth and all kinds of silk materials were already being produced in the kingdoms of Gujirat and Cambay, while the Deccan produced large quantities of calico, a coarse cloth usually imprinted with bright designs. All of these textiles were sent to ports on the Red Sea's western shore as well as those in the Horn of Africa, where they were bartered for gold, ivory, horses, and slaves. Significant amounts of these Indian textiles made their way into Ethiopia's interior. The importation of Indian textiles increased in the 17th and 18th centuries. Another item produced in India that reached Ethiopia during this time period was ready-made garments. According to Jesuit missionary Emanuele Barradas, the silk textiles, brocades, velvets, and damasks were imported not in pieces but mostly as ready-to-wear articles of clothing cut in Moorish style, and the Abyssinians paid for them with gold nuggets "by weight" (Beckingham 1954: 43). They also traded grain, ivory, musk, wax, and slaves for garments with India. All of these textiles were sent to ports on the Red Sea's western shore as well as those in the Horn of Africa, where they were bartered for gold, ivory, horses, and slaves. Significant amounts of these Indian textiles made their way into Ethiopia's interior. The importation of Indian textiles increased in the 17th and 18th centuries.

India's contribution to the art of building and architecture, particularly the construction of castles in Gondar, has been widely debated, although no clear conclusions have been reached. However, it is probable that the Jesuits brought with them Indian craftsmen who succeeded in manufacturing lime from the indigenous calcium carbonate known as nora around 1619 (Beckingham 1954: 834, 187-88). Following that, mortar was used to build the royal palace at Gannata Maryam near Gorgora, as well as bridges and, subsequently, the castles of Gondar. It has been assumed that the latter's style must imitate Portuguese architecture, which is clearly incorrect. In reality, the majority of them are inspired by Indian Mogul architecture (Chojnacki 2003).

Indian teachers and businessmen settled in Ethiopia in the late nineteenth century. The majority of the settlers came from Gujarat. According to current statistics, more than 8,000 people of Indian descent live in Ethiopia. The relationship between India and Ethiopia has grown stronger. In modern historical terms, these relationships have expanded beyond early commercial transactions to include political, technical, and sociocultural exchanges (Banda 2021).

Since then, the relationship has gone through numerous stages. During Emperor Haile Selassie's reign (1941–1974), the connections were extremely close. The Emperor encouraged many Indian instructors to work in Ethiopia, particularly in rural regions, to help boost literacy levels. Relations between the two nations have been particularly amicable during Ethiopia's current democratic dispensation, which began in 1991 and has been followed by economic liberalisation programmes. During these phases, the leaders of the two nations have made high-level bilateral exchange visits. Emperor Haile Selassie, for example, visited India in 1956, 1959, and 1968. Ethiopia's leader, Haile Mengistu Mariam, also visited India in 1983. President Sarvepalli Radhakrishnan of India also visited Ethiopia in 1965. Prime Minister Manmohan Singh also visited Ethiopia in 2011. Ethiopia has also dispatched high-level delegations to India-Africa conferences held in New Delhi. Similarly, Addis Ababa hosted the India-Africa summit in 2011.

Indian and Ethiopian ties have happened at numerous levels in the post-Cold War era, both during the late twentieth and early twenty-first centuries, leading to the signature of some of the following agreements: Air Services Agreements,1993, 2004, and 2008; Trade Agreement, 1997; Agreement on Cooperation in Micro Dams and Small Scale Irrigation Schemes, 2002; Agreement on Cooperation in Science and Technology,2007; Protocol on Foreign Office Consultations (2007); and the Double Taxation Avoidance Treaty 2011,, to name a few. The Joint Trade Committee (JTC) agreement, agreed in 1997, has resulted in the two countries' trade connections flourishing. The volume of commerce in 2018/2019 showed the following figures: $713 million in Indian exports to Ethiopia and $53.6 million in Ethiopian exports to India. The primary Indian exports to Ethiopia include packaged pharmaceuticals, coated flat-rolled iron, and rice. Soybeans, dry legumes, and spices are the principal products for Ethiopia from India.

Aside from trade, the relationships can also be evident at the educational level. The two countries agreed on an Educational Exchange Programme in July 2007. This has resulted in student exchanges and academic expertise movements on both sides, assisting in the reduction of illiteracy and the promotion of new technologies in the twenty-first century. Cultural interactions have taken place between the two countries as well. Cultural and dance groups from both countries have travelled to perform as a result of this. The Gujarati Dance Troup, Bihari Dance Group, and Goa Dance Troup are among many who have performed in Ethiopia at some point. In 2013, the Ethiopian Embassy in New Delhi also opened a cultural centre, further cementing India-Ethiopia relations. All of these relationships have been made possible by the Indian government's outward-looking policy. Recently, the current Indian Prime Minister, Narendra Modi, has advocated for "multi-alignment," which has aided in the improvement of India-Ethiopia relations.

Reference

(* Indicates Primary Source)

1. Banda, Paul Chiudza (2021), "India and Ethiopia: Historical relations and prospects for the future", Extraordinary and Plenipotentiary Diplomatist, Analysing International Relations.
2. Beckingham, C.F. (1954), "Some Records of Ethiopia 1593-1646; being Extracts from History of High Ethiopia or Abassia by Manoel de Almeida", With G.W.B Huntingford (London), the Hakluyt Society,4(83):88-187.
3. Chojnacki, Stanislaw (2003), "NEW ASPECTS OF INDIA'S INFLUENCE ON THE ART AND CULTURE OF ETHIOPIA", Istituto per l'Oriente C. A. Nallino Stable 2 (45) 5-21.
4. Gupta, Rajneesh, 'Non-State Actors in International Relations: A case of Indian Diaspora in
5. Africa,', at http://www.iriis.in/pdf/2030452091.pdf. Accessed March 12, 2013.
6. Gervers, Michael (1983), "Traditional Cotton Costume in Ethiopia", Rotunda (Toronto), 39-43.
7. Gupta, Rajneesh Kumar. Role of Indian diaspora in East Africa: Challenges of Integration,
8. 1963-2003, New Delhi: JNU. 2008.
9. Gupta R.K. 'Indian Diaspora as a Non-State Actor in Promotion of India-Africa Partnership'
10. Journal of Social and Political Studies, Vol. IV (1), June 2013 pp. 135-148.
11. Lal, Brij V (eds.) the Encyclopedia of the Indian Diaspora, Singapore: Editions Didier Millets., 2007.
12. Pankhurst, R. (1974), Indian trade with Ethiopia, the Gulf of Aden and the Horn of Africa in the nineteenth and early, Cahiers d'Études Africaines, 55(8): 453–497.
13. Sheffer, Gabriel. (19860) 'Diaspora Politics", Cambridge: Cambridge University Press, Cambridge.
14. Sheth, V.S 'Dynamics of Indian Diaspora in East and South Africa and changing Global Order' in Ajay Dubey (eds.), Indian Diaspora: Global Identity, Delhi: Kalinga Publications, 2003.
15. Sinha, Dr. Neha (2019), "An Overview of Indian Diaspora in Africa: Implications for India", Vivekananda International Foundation, New Delhi.

Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 4
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना

डॉ. विजय कुमार शर्मा
असिस्टेण्ट प्रोफेसर वेद, वेद विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Publication Issue :
July-August-2023
Volume 6, Issue 4
Page Number : 10-15
Article History
Received : 01 July 2023
Published : 13 July 2023

शोधसारांश
वैदिक काल में जिस प्रकार से मानव प्राकृतिक वातावरण को बिना क्षति पहुँचाए उसके साथ आनन्दमयी जीवन व्यतीत करता था। लेकिन आधुनिक युग में मनुष्य प्रकृति के तत्वों को नुकसान पहुँचाकर वातावरण को प्रदूषित कर रहा है, आने वाले समय में यह वातावरण मनुष्य के रहने के अनुकूल नहीं रह जाएगा। इसलिए हमें अभी से सजग होकर पर्यावरण के प्रति चेतना जागृत करना चाहिए।
मुख्यशब्द–वैदिक, साहित्य, पर्यावरण, मनुष्य,विज्ञान, संस्कृत, वेद।

आज के विज्ञान युग में मानव अपने क्षणिक भौतिक सुखों की प्राप्ति हेतु प्रकृति द्वारा प्रदत्त नैसर्गिक वातावरण को दूषित करता जा रहा है। वह विभिन्न कारखानों की स्थापना करता जा रहा है। उन कारखानों से निकलने वाला औद्योगिक कचरा हमारी प्राणदायिनी नदियों के जल को एवं आस–पास के वातावरण को सतत प्रदुषित करता रहता है। इन कारखानों एवं विभिन्न प्रकार की मोटर, गाडियों तथा विमानों आदि से निकलने वाली तीव्र कर्णभेदी आवाज ध्वनि–प्रदूषण में वृद्धि करती रहती है। अधिक उपज की चाह में रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के द्वारा लोग पृथ्वी को भी वंध्या करते जा रहे है। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित भौतिक सुख के एक साधन रेफ्रिजरेटर से निकलने वाली गैस से ओजोन परत की क्षय का खतरा उत्पन्न कर दिया है, यह खतरा दिन प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित आणविक बम ने सृष्टि के विनाश का खतरा पैदा कर दिया है। वस्तुतः आधुनिक वैज्ञानिकों ने हमें इस समय बारूद के ढेर पर बैठा दिया है, यदि इसमें जरा सी भी चिंगारी लग जाये तो सारी दुनिया क्षण मात्र में नष्ट हो जायेगी। इस आधुनिक विद्या को यदि हम पैशाचिक विद्या की संज्ञा दे तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। इतना ही नहीं आज के जैव वैज्ञानिक जो प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कृत्रिम रूप से क्लोन आदि विधियों के द्वारा प्रतिरूपों की रचना कर रहें हैं, वह मानव की पैशाचिक प्रवृत्ति का ही उदाहरण है। यही कार्य रक्तबीज आदि राक्षस भी अपनी पैशाचिक (मायावी) विद्या द्वारा स्वयं के अनेक प्रतिरूप तैयार कर लिया करते थे। पूरा भारतीय मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने आज से हजारों वर्ष पूर्व सृष्टि के समस्त प्राणियों के कल्याणार्थ पर्यावरण की महत्ता एवं उसको दूषित होने से बचाने, प्रकृति के प्रति संवेदनशील एवं उसके संरक्षण तथा मानव–जीवन में होने वाली व्याधियों तथा उसके स्वास्थ्य के संवर्द्धन के सम्बन्ध में अनेक तत्वों का अन्वेषण किया था। पर्यावरण के सभी बिन्दुओं पर उनकी सजग दृष्टि थी। इन मनीषियों ने समाज में रहने वाले व्यक्तियों का ध्यान पर्यावरण सुरक्षा की तरफ आकृष्ट किया। वैदिक कालीन जन पृथ्वी अर्थात् भूमि के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखते थे। पर्यावरण का संरक्षण उपासना का एक अविभाज्य अंग था। अथर्ववेद के एक मंत्र में वैदिक ऋषि

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

पृथ्वी की उपासना करते हुए कहा है कि ''हे पृथ्वी! तुम्हारे गिरि, तुम्हारे हिम से ढँके पर्वत और वन कल्याणकारी हों, भूरी, काली, लाल, विविध रूपों वाली स्थिति, उत्पन्न विस्तृत भूमि पर अजेय अहत और अक्षत मैं अधिष्ठित होऊँ'' –

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तो अरण्यं ते पृथिवि स्यनोमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विष्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम्।।

ऋग्वेद में प्रकृति का मनोहारी चित्रण हुआ है। ऋग्वैदिक काल में प्राकृतिक जीवन को ही सुख शान्ति का आधार माना गया है। किस ऋतु में कैसे रहना चाहिए, क्या–क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए, इन सब का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। मण्डूक सूक्त में ग्रीष्म ऋतु में मण्डूकों के आतप से बचने हेतु तहखानों में छिपने तथा वर्षा ऋतु आने पर बाहर निकलने की सूचना मिलती है। मण्डूक सूक्त के ही एक मंत्र में कहा गया है कि ''नेतृत्व करने वाले ये मेंढक देवताओं के द्वारा बनाए गये विधान की अर्थात् ऋतु आदि के नियमों की रक्षा करते हैं'', और इस प्रकार से बारह मासों वाले वर्षा के ऋतुओं की हिंसा नहीं करते, अर्थात् समस्त ऋतुयें क्रमशः आती रहती हैं। वर्षा के पूर्ण होने पर ग्रीष्म में रहने वाले और गर्मी से संतप्त रहते हुए ये मेंढक बिलों से छुटकारा पाते हैं अर्थात् बिलों से बाहर निकलते हैं–

देवह्वतिं जुगुपुर्द्वादषस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता धर्मो अश्नुवते विसर्गम्।।

वायु, जल, ध्वनि, खाद्य, मिट्टी व सम्पदा संरक्षण आदि की दृष्टि से वेदों में वर्णित पर्यावरण को अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। वायु की शुद्धता एवं महत्ता पर बल सजीव प्राणियों के लिए स्वच्छ पर्यावरण प्रथम आवश्यक है। प्रकृति (ईश्वर) ने प्राणि जगत् के चारों तरफ वायु का एक घेरा फैला रखा है। बिना वायु (प्राणवायु = ऑक्सीजन) के किसी भी जीव का जीवित रहना असम्भव है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में सृष्ट्योत्पत्ति की प्रक्रिया में वायु को विराट् पुरुष के प्राण से सम्बद्ध किया गया है –

चन्द्रमा मनसो जातष्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रष्चाग्निष्च प्राणाद्वायुरजायत।।

मानव शरीर के भीतर रक्तवाहिनी नलिकाओं में प्रवाहमान रक्त बाहर की तरफ दबाव डालता है। वायुमण्डलीय दबाव इन्हें सन्तुलित करता है, अन्यथा मानव शरीर के भीतर की धमनियां एवं शिरायें फट जायेंगी तथा जीवन का अन्त हो जायेगा। ऋग्वेद के वात सूक्त में वायु को दिव्य–शक्ति सम्पन्न, रूपहीन एवं अनुमेय बताते हुए समस्त भुवन अर्थात् प्राणिमात्र का बीज रूप बताया गया है–

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावंष चरति देव एषः।
घोषा इदस्य श्रृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम।।

वायु की शुद्धि नितान्त आवश्यक है। ऋग्वेद में वायु को दो वर्गों में विभक्त किया गया है– 1. शुद्ध वायु जो श्वास लेने योग्य होती है, 2. जीवधारियों के लिए हानिकारक वायु (दूषित वायु)।

द्राविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद्रपः।।

अर्थात्– ये दो वायु हैं। प्रथम समुद्र से आने वाला वायु, तथा द्वितीय दूर भूमि पर से आने वाली वायु है। ऋषि प्रकृत मंत्र में कहता है कि ''हे साधक! एक तो तुम्हारे लिए बल को प्राप्त कराती है और एक जो दूषित है, उसे दूर फेंक देती है।'' हमारे प्राचीन मनीषियों को हजारों वर्षों पूर्व यह ज्ञात था कि वायुमण्डल

मात्र एक नहीं अपितु वायु समूहों (गैसों) का मिश्रण है। इनके अलग–अलग गुण एवं अवगुण हैं। इसी वायुमण्डल में प्राणवायु जिसे हम आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में ऑक्सीजन कहते हैं, भी सम्मिलित है। यह प्राणवायु हमारे जीवन की रक्षा हेतु अपरिहार्य है।

यददौ वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे।।

अर्थात् इस वायु के गृह (वायुमण्डल) में अमरत्व की जो यह धरोहर अर्थात् प्राणवायु स्थापित है, वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। शुद्ध वायु कई रोगों हेतु अचूक औषधि का कार्य करती है। आज भी यौगिक क्रियाओं में प्राणायाम, जिसमें शुद्ध वायु को ग्रहण कर अशुद्ध वायु को निकाला जाता है का विशेष महत्व है। इस प्राणायाम से मानव के उदर सम्बन्धी अनेक व्याधियों का अंत हो जाता है। तपेदिक जैसे घातक रोगों के लिए शुद्ध वायु औषधि स्वरूप है। एक ऋग्वैदिक ऋषि ने स्वच्छ वायु की महत्ता बताते हुए कहा है कि –

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टताभिः।
दक्षं त उग्रमाषारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते।।

अर्थात् हे रोगी मनुष्य! मैं तेरे पास सुखकर और रक्षण के लिए उपस्थित हुआ हूँ। तुम्हारे लिए कल्याणकारी बल को शुद्ध वायु के द्वारा लाता हूँ और तुम्हारे जीर्ण रोगों को दूर करता हूँ। स्वच्छ वायु हृदय रोगों के लिए अमूल्य औषधि है एवं आयु का वर्द्धन करती है –

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आयुँषि तारिषत्।।

जल एवं उसकी स्वच्छता का महत्व : मानव शरीर का लगभग तीन चौथाई भाग जलीय अवयवों से निर्मित है। समस्त जीवधारियों के लिए जल ही जीवन है। प्राचीन विश्व की अधिकांश सभ्यतायें यथा सिन्धु–सभ्यता, मिश्र–सभ्यता आदि नदी–घाटियों में ही विकसित हुई थी। तत्कालीन मनुष्यों को वहाँ नदियों से स्वच्छ जल मिलता था। ये नदियाँ उनके आवागमन की माध्यम थीं। आज भी विश्व के अधिसंख्य समृद्ध शहर नदियों अथवा समुद्र जैसे विशाल जलीय स्रोतों के तट पर ही अवस्थित हैं, परन्तु आज के औद्योगीकरण के युग में शहरों के औद्योगिक कचरा एवं गन्दी नालियों ने पवित्र जलवाहिनी नदियों के जल को प्रदूषित कर दिया है। ये प्रदूषित जल भयंकर बिमारियों के स्रोत हैं, जिसे मानव या पशु–पक्षी ग्रहण करते ही इसकी चपेट में आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त आणविक अस्त्रों को इकट्ठा करने की होड में समुद्र में जल के भीतर जो परीक्षणात्मक विस्फोट किये जाते हैं, उनसे भी समुद्र का जल प्रदूषित हो जाता है, जिससे उसमें निवास करने वाले असंख्य प्राणियों को अकाल काल कवलित होना पडता है। ऋग्वैदिक काल में शुद्ध पेय जल की प्राप्ति हेतु गहरे कुए खोदने का भी उल्लेख मिलता है। इस कुए का निर्माण मरुतों ने गौतम ऋषि के लिए किया था–

उर्ध्व ननुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिदि्बभिदुर्वि पर्वतम्।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे।।

शुद्ध जल मनुष्य को दीर्घ आयु प्रदान करने वाला, प्राण–रक्षक तथा कल्याणकारी है। एक ऋग्वैदिक ऋषि इसी भाव को प्रतिपादित करते हुए कहता है कि, सुखमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए कल्याणकारी हो–

षं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीयते।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः।।

अथर्ववेद में जल की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए एक स्थान पर कहा गया है कि ''जल मंगलमय और घी के समान पुष्टिदाता है तथा वही मधुर जलधाराओं का स्रोत भी है। भोजन को पचाने में उपयोगी तीव्र रस है। प्राण और कान्ति, बल और पौरुष देने वाला अमरत्व की ओर ले जाने वाला मूल तत्व है'' –

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्रीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरेग आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्।।

कृषकों की दृष्टि कृषिकर्म हेतु वर्षा ऋतु में मेघों पर ही लगी रहती है। एक ऋग्वैदिक ऋषि कहते हैं कि ''हे जल! तुम अन्न प्राप्ति हेतु उपयोगी हो। जीवन, नाना प्रकार की औषधियाँ व अन्न तुम पर ही आश्रित हैं। तुम औषधि रूप हो'' –

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः।।

ध्वनि–प्रदूषण एवं उसका निदान : तीव्र ध्वनि सिरदर्द, तनाव, अनिद्रा आदि बीमारियों का मूल कारण है। आजकल किसी कार्यक्रम का आयोजन बिना ध्वनि विस्तारक यंत्र के सम्पन्न नहीं होता। जहाँ पर इन यंत्रों के बिना भी कार्य चल सकता है, वहाँ भी इसका प्रयोग अनिवार्य रूप से होता है। संगीत यद्यपि देवोपासना का एक महत्वपूर्ण अंग है, किन्तु खेद का विषय है कि आजकल ध्वनि के साधनों का दुरुपयोग हो रहा है। रेडियों, ट्रांजिस्टर, टेलीवीजन, ध्वनि विस्तारक यंत्र एवं विभिन्न औद्योगिक संस्थानों के शोर सारे दिन कान के परदे फाडते रहते हैं, जिससे कि आगे चलकर श्रवण शक्ति कमजोर हो जाती है। वेदों में स्वास्थ्यगत दृष्टि को ध्यान में रखते हुए तीक्ष्ण ध्वनि से बचने के लिए तथा आपसी वार्ता में धीमा एवं मधुर बोलने के लिए कहा गया है–

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

अर्थात्– भाई, भाई से व बहन, बहन से द्वेष न करें। परिवार के सभी लोग एक मत व एकव्रती होकर आपस में शान्ति से भद्र पुरुषों के समान भद्रता से वार्तालाप करें। अथर्ववेद में ऋषि प्रार्थना करते हुए एक मंत्र में कहता है कि ''मेरी जिह्वा से मधुर स्वर निकले। भगवान का भजन, पूजन तथा कीर्तन करते समय मूल में मधुरता हो। मधुरता मेरे कर्म में निश्चयतापूर्वक रहे। मेरे चित्त में मधुरता बनी रहे''–

जिव्हाया अग्रे मधु मे जिव्हामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।।

खाद्य–प्रदूषण का निरोध :भोजन से हमारे शरीर को उर्जा मिलती है। वैदिक साहित्य में अन्न की अत्यधिक महत्ता का वर्णन किया गया है। मानव एवं अन्य जन्तुओं को ही नहीं देवों को भी भोजन अभीष्ट था। याज्ञिक क्रियाओं में हवि द्वारा अर्पित यज्ञान्न अग्नि द्वारा देवताओं के पास ले जाया जाता था–

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विष्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति।।

ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में सर्वप्रथम उत्पन्न सहस्रशीर्ष एवं सहस्रपाद वाले आदि पुरुष को भी अन्न से वृद्धि प्राप्त करने वाला कहा गया है–

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येषानो यदन्नेनातिरोहति।।

वैदिक साहित्य में खाद्य–सामग्री के सम्बन्ध में वैज्ञानिक आधार पर निष्कर्षों का प्रतिपादन किया है। अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि मनुष्य पाचन शक्ति से भोजन को भली–भाँति पचाये। इसी तरह दूध जल आदि पेय पदार्थों के बारे में भी उल्लेख है–

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः।
प्राणानमुष्य संपास सं पिबामो अमुं वयम्।।

अर्थात् मैं जो भी पीता हूँ, यथाविधि पीता हूँ, जैसे यथाविधि पीनेवाला समुद्र पचा लेता है। हम दूध, जल जैसे पेय पदार्थों को उचित ढंग से ही पिया करें। खाद्य सामग्री के बारे में अथर्ववेद में आगे उल्लेख है कि, जैसे यथाविधि खाने वाला समुद्र सब कुछ पचा लेता है, हम भी उसी तरह यथाविधि शान्तिपूर्वक खूब चबा–चबाकर खायें–

यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम्।।

मृदा (पृथ्वी) के प्रदुषण का निवारण : अथर्ववेदीय पृथ्वीसूक्त के कुल ६३ मंत्रों में पृथ्वी की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इस सूक्त में पृथ्वी को सभी भौतिक वस्तुओं को धारण करने वाली और बल प्रदान करने वाली माता के रूप में प्रशंसा कर उससे सुख और शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है। इस सूक्त में सर्वाधिक उल्लेखनीय पृथ्वी का माता के रूप में वर्णन है। अत्यन्त श्रद्धा और स्नेहपूर्ण भाव से ऋषि ने बार–बार पृथ्वी से उसी प्रकार शक्ति, तेज और अन्न की प्रार्थना की है। जैसे– पुत्र अपनी वत्सला माता से करता है–

'सा नो भूमिं विसृजतां माता पुत्राय मे पयः।'
'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।।'

पृथ्वी के निर्माण के बारें में अथर्ववेद में कहा गया है कि –

षिला भूमिरष्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षये पृथिव्या अकरं नमः।।

अर्थात् भूमि चट्टान, पत्थर और मिट्टी है। मैं उसी हिरण्यगर्भा पृथ्वी के लिए स्वागत वचन बोलता हूँ। नाना प्रकार के फल–फूल औषधियाँ एवं वनस्पतियाँ इसी मिट्टी पर उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता एवं मेघ (पर्जन्य) पिता है–

यस्यामन्न व्रीहियवौ यस्या इमाः पंच कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।13.

पृथ्वी वनस्पतियों को जन्म देती है, इसलिए वह माता है। पर्जन्य (मेघ) वर्षा द्वारा उसे सींच कर उसका पोषण करता है, इसलिए वह पिता का कार्य करता है।

अतः स्पष्ट हैं कि वैदिक काल में जिस प्रकार से मानव प्राकृतिक वातावरण को बिना क्षति पहुँचाए उसके साथ आनन्दमयी जीवन व्यतीत करता था। लेकिन आधुनिक युग में मनुष्य प्रकृति के तत्वों को नुकसान पहुँचाकर वातावरण को प्रदूषित कर रहा है, आने वाले समय में यह वातावरण मनुष्य के रहने के अनुकूल नहीं रह जाएगा। इसलिए हमें अभी से सजग होकर पर्यावरण के प्रति चेतना जागृत करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. ऋग्वेद : ७.१०३.८१।।
2. ऋग्वेद : ७.१०३.६।।
3. ऋग्वेद : १०.६०.१३।।
4. ऋग्वेद : १०.१६८.४।।
5. ऋग्वेद : १.८५.८।।
6. ऋग्वेद : ३.१३.५।।
7. अथर्ववेद : ३.३०.३ ।।
8. अथर्ववेद : १.३४.२ ।।
9. अथर्ववेद : ६.१३५.२ ।।
10. अथर्ववेद : ६.१३५.३ ।।
11. अथर्ववेद : १२.१.२६ ।।
12. ऋग्वेद : १.१.४।।
13. ऋग्वेद : १०.६०.२।।

Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 4
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

किशोरी छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य के संवेगात्मक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन

सपना शाही
शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।

Article Info

Publication Issue :
July-August-2023
Volume 6, Issue 4

Page Number : 16-22

Article History
Received : 01 July 2023
Published : 13 July 2023

सारांश– मानसिक स्वास्थ्य मानव जीवन के मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक और सामाजिक पहलुओं के मध्य संतुलन की स्थिति है। जिससे व्यक्ति को अपनी क्षमताओं का ज्ञान होता है। मानव विकास क्रम में किशोरावस्था एक संक्रामक अवधि है, संवेगात्मक अस्थिरता, विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने में समायोजन की कमी तथा अपने माता–पिता एवं शिक्षक को समझनें में कमी इत्यादि को प्रकट करती है, किशोरी छात्राएं भी अधिक संवेगात्मक स्थिरता का सामना करती हैं जिसका प्रभाव उसके मानसिक स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। परिवार एवं विद्यालय किशोरियों के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। कोविड–19 महामारी के दौरान किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव में वृद्धि देखी गयी है। इसलिए वर्तमान शोध का उद्देश्य उत्तराखण्ड के ऊधमसिंह जिले के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत जनजातीय किशोरी छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य के संवेगात्मक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करना है। शोधकर्त्ताओं के द्वारा स्तरीकृत यादृच्छिक नमूनाकरण द्वारा 120 जनजातीय (थारू एवं बुक्सा) किशोरी छात्राओं को चयनित किया गया है। आँकड़ों के संग्रहण हेतु प्रो0 ढौंढियाल (2006) द्वारा विकसित संवेगात्मक अस्थिरता प्रश्नावली को प्रयुक्त किया गया तथा आँकड़ों के विश्लेषण हेतु प्रतिशत, मध्यमान, मानक विचलन एवं टी परीक्षण सांख्यिकी का प्रयोग किया गया। निष्कर्षों में जनजातीय किशोरी छात्राओं के मध्य संवेगात्मक स्थिरता में अन्तर पाया गया।

कुंजी शब्द– मानसिक स्वास्थ्य, संवेगात्मक स्थिरता, किशोरी छात्राएं।

1.0.0 प्रस्तावनाः–मानसिक स्वास्थ्य मानव कल्याण की एक महत्वपूर्ण अवस्था है जो जीवन के सभी पहलुओं यथा– सामाजिक, शारीरिक, आध्यात्मिक और संवेगात्मक पहलुओं के मध्य संतुलन को दर्शाता है। स्वय के बारें में खुश और सकारात्मक महसूस करना और जीवन का आनंद लेना, परिवार व मित्रों के साथ स्वस्थ संबंध, शारीरिक गतिविधियों में भाग लेना और स्वस्थ आहार खाना, अच्छी नींद लेने की क्षमता, तनाव से निपटने की क्षमता तथा सामुदायिक भागीदारी, विपरीत परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता इत्यादि

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

आयाम मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित हैं। मानसिक कल्याण के लिए सामाजिक और संवेगात्मक आदतों को विकसित करने के लिए किशोरावस्था एक महत्वपूर्ण अवधि है। छह में से एक व्यक्ति की उम्र 10–19 वर्ष है। किशोरावस्था एक अनूठा एवं रचनात्मक समय है किशोरियां जितने अधिक जोखिम वाले कारकों के सम्पर्क में आती हैं, उनके मानसिक स्वास्थ्य पर संभावित प्रभाव उतना ही अधिक होता है। किशोरावस्था में तनाव में वृद्धि करने वाले कारकों में प्रतिकूलता जोखिम, साथियों के अनुरूप होने का दबाव और पहचान की खोज, शारीरिक परिवर्तन इत्यादि सम्मिलित हैं। मीडिया प्रभाव और लैंगिक मानदंड एक किशोरी की जीवित वास्तविकता और भविष्य के लिए उनकी धारणाओं व आकाक्षांओं के मध्य असमानता को बढ़ा सकते हैं। हिंसा विशेष रूप से (यौन हिंसा और डराना–धमकाना), कठोर पालन–पोषण और गंभीर सामाजिक–आर्थिक समस्याओं को मानसिक स्वास्थ्य के लिए जोखिम माना गया है (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2021)।

संवेग, भावनाओं और उसके विशिष्ट विचारों, मनोवैज्ञानिक और जैविक अवस्थाओं और कार्य करने की प्रवृत्ति की सीमा को संदर्भित करते हैं। संवेगों में स्थिरता का अर्थ है, दृढ़ता से स्थापित या स्थिर, अच्छी तरह से समान स्थिति में रहने में सक्षम (माधवन,2016)। संवेगात्मक स्थिरता न केवल व्यक्तित्व पैटर्न के प्रभावी निर्धारकों में से एक हैं बल्कि यह किशोर बालक–बालिकाओं के विकास को निर्धारित करने में भी सहायता करती हैं। किसी भी स्तर पर स्थिर संवेगात्मक व्यवहार की अवधारणा वह है जो सामान्य संवेगात्मक विकास के परिणाम को दर्शाता है (संतोष एवं अन्य, 2020)। बेहतर मानसिक स्वास्थ्य के सात महत्वपूर्ण संकेंतकों में से एक के रूप में संवेगात्मक स्थिरता है। (राउल,2016, मथीन,2011)। संवेगात्मक स्थिरता पर पुरूष और महिला छात्रों के औसत अंकों के मध्य अंतर की जाँच में पुरूष छात्र महिला छात्राओं की तुलना में अधिक संवेगात्मक रूप से स्थिर पाए गए (अलीम, 2005, चौबे एवं अन्य, 2017,खुर्शीद,2018)। छात्रों का संवेगों पर नियंत्रण नहीं होता है तो यह हीन भावना, ग्लानि और चिंता, अवसाद का कारण बन सकता है(कुमार, 2012, पाण्डे एवं अन्य 2017)। छात्रों की संवेगात्मक स्थिरता तथा संवेगात्मक परिपक्वता पर शोध के स्तरों के मध्य महत्वपूर्ण अंतर पाया गया (जपाटा, 2015)। लिंग तथा जाति आधार पर किए गए शोध अध्ययन में सामान्य वर्ग के छात्र–छात्राओं में संवेगात्मक स्थिरता, अनुसूचित जाति के छात्रों की अपेक्षा अधिक पायी गयी (वानी एवं अन्य, 2016)। संवेगात्मक स्थिरता और शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य महत्वपूर्ण संबंध है तथा लिंग, अभाव, प्रबंध के प्रकार के संबंध और भावनात्मक स्थिरता में महत्वपूर्ण अंतर पाया (कुमारवेलू, 2018)। बच्चों के आवासीय क्षेत्र के आधार पर संवेगात्मक स्थिरता में अंतर पाया गया (सांगवान, 2020)।

हाल ही में कोविड–19 महामारी ने पूरे विश्व को प्रभावित किया है। ऑनलाइन कक्षाऐं, करियर के कम अवसर, मौजूदा जीवन शैली से तालमेल बैठाने में दिक्कतें, आर्थिक तंगी और वायरस के डर के रूप में जीवन में नई चुनौतियां जोड़ दी हैं, जिसने संवेगात्मक स्थिरता को सर्वाधिक प्रभावित किया है। घर पर रहने की मजबूरी, दोस्तों से न मिल पाने के कारण हताशा, चिंता, तनाव, अवसाद तथा क्रोध के स्तर में वृद्धि हुई है (शाह एवं अन्य, 2020)। इन सभी ने किशोर–किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता पर नकारात्मक प्रभाव डाला है और वे कई मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं उनके सकारात्मक संवेगों में कमी तथा नकारात्मक संवेगों में वृद्धि हुई है (महेश्वरी एवं गुजराल, 2021)। सामाजिक वांछनीयता और वैश्विक संतुष्टि सकारात्मक रूप से संवेगात्मक स्थिरता से जुड़ी हुई हैं और अवसाद नकारात्मक रूप से। साथ ही चिंता,अवसाद और वैश्विक जीवन संतुष्टि के मध्य कोई संबंध नहीं पाया गया (रामोस, 2021)।

पिछले कुछ दशकों में बच्चों और युवाओं में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी कठिनाइयों के प्रसार पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चिंता बढ़ रही है। बालिकाओं की स्थिति एवं युवा महिलाओं के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य के बारें में कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के विशेष चिंता व्यक्त की है। इसलिए वैश्विक स्तर पर बालिकाओं की समस्याओं पर शोध कार्यो की आवश्यकता बढ़ी है। किशोरियों के शैक्षिक उन्नति एवं विकास उन्हें विपरीत परिस्थितियों से बचाना, सामाजिक–संवेगात्मक शिक्षा और मनोवैज्ञानिक कल्याण को बढ़ावा देना और मानसिक स्वास्थ्य देखभाल तक पहुँच सुनिश्चित करना, किशोरावस्था के दौरान उनके स्वास्थ्य कल्याण के लिए अति आवश्यक है। पूर्व में किए गए शोध कार्यो की समीक्षा से ज्ञात हुआ है कि जनजातीय किशोरी बालिकाओं की संवेगात्मक स्थिरता से संबधित शोध कार्य नगण्य हैं। अतः शोधार्थियों द्वारा वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा जनजातीय बालिकाओं के प्रति रूचि एवं शोध आवश्यकता को देखते हुए प्रस्तुत शोध समस्या का चयन किया गया।

समस्या कथनः–शोध अध्ययन हेतु समस्या की पहचान निम्न रूप में की गयी है–

'' किशोरी छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य के संवेगात्मक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन।''

2.0.0. शोध उद्देश्य : प्रस्तुत शोध कार्य के निम्नवत उद्देश्य निर्धारित किये गए हैं–

2.1.1. विभिन्न स्तरों(उच्च, मध्य एवं निम्न) पर जनजातीय किशोरी छात्राओं की संवेगात्मक स्थिरता का अध्ययन करना।

2.1.2. थारू एवं बुक्सा जनजातीय किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता का अध्ययन करना।

3.0.0. शोध परिकल्पनाएंः प्रस्तुत शोध कार्यों के उद्देश्यों एवं उपयुक्त सांख्यिकी विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए निम्नवत शून्य परिकल्पनाएं निर्मित की गई हैं–

3.3.1. थारू एवं बुक्सा जनजातीय किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है।

4.0.0. शोध प्रविधिः प्रस्तुत शोध कार्य हेतु उत्तराखण्ड राज्य के ऊधम सिंह नगर जनपद के राजकीय माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा 9 एवं 10 में अध्ययनरत् 60 थारू तथा 60 बुक्सा जनजाति की किशोरी छात्राओं को स्तरीकृत् यादृच्छिक न्यादर्श तकनीकी को प्रयुक्त करके चयनित किया गया है। आंकड़ों के संकलन हेतु ढौंढियाल, (2006) कृत संवेगात्मक अस्थिरता प्रश्नावली जिसके अंतर्गत 56 कथन है जिन्हें हाँ/नहीं में वर्गीकृत किया गया है प्रयुक्त की गई है। प्रदत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु प्रतिशत,मध्यमान, मानक विचलन तथा टी–परीक्षण मानों को प्रयुक्त किया गया है।

5.0.0. प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्याः प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या निम्नवत प्रस्तुत है–

जनजातीय किशोरी छात्राओं में भावनात्मक स्थिरता का आकलन

तालिका संख्याः 1.1

संवेगात्मक स्थिरता का स्तर	Frequency	%
उच्च	12	10 %
मध्यम	66	55 %

निम्न	42	35 %	N=120
कुल	120	100%	

उपरोक्त तालिका संख्या 1.1. के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश जनजातीय किशोरी छात्राओं में (55%) मध्यम स्तर की संवेगात्मक स्थिरता थी। निम्न स्तर पर (35%) तथा उच्च स्तर पर छात्राओं में (10%) सबसे कम संवेगात्मक स्थिरता पायी गयी। चौबे एवं अन्य (2017) द्वारा अपने अध्ययन के परिणामों में मध्यम स्तर पर छात्राओं में सबसे अधिक संवेगात्मक स्थिरता दर्शाई गयी थी।

तालिका संख्याः 1.2. थारू एवं बुक्सा जनजातीय किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता का आकलन

संवेगात्मक स्थिरता का स्तर	थारू		बुक्सा	
	F	%	F	%
उच्च	07	11.66%	05	8.33%
मध्यम	40	66.67%	26	43.33%
निम्न	13	21.67%	29	48.34%
कुल	60	100%	60	%

तलिका संख्या 1.2 से स्पष्ट होता है कि अधिकांश जनजातीय थारू(66.67%) किशोरी छात्राओं में मध्यम स्तर एवं बुक्सा (48.34%) किशोरी छात्राओं में निम्न स्तर पर संवेगात्मक स्थिरता पायी गयी। 11.67 प्रतिशत थारू छात्राओं तथा 8.33 प्रतिशत बुक्सा छात्राओं में उच्च स्तर की भावानात्मक स्थिरता थी।

थारू एवं बुक्सा जनजातीय किशोरी छात्राओं की संवेगात्मक स्थिरता में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है। तालिका संख्या 1.3 में प्रस्तुत किया गया है–

तालिका 1.3.

थारू एवं बुक्सा जनजातीय किशोरी छात्राओं की संवेगात्मक स्थिरता का परीक्षण

जनजाति	कुल संख्या (n)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	'टी' मान ('t' value)	0.05 स्तर पर सार्थकता
थारू	60	34.00	6.53	3.087	सार्थक
बुक्सा	60	29.9	7.95		

तालिका 1.3. का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि दोनों समूहों की जनजातीय किशोरियों के मध्य आगणित 'टी' का मान (=3.087) सार्थकता स्तर के मान 0.05 से अधिक है। इसीलिए दोनों समूहों के मध्यमान का अन्तर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना ''थारू एवं बुक्सा जनजातीय किशोरी छात्राओं की संवेगात्मक स्थिरता में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है'', अस्वीकृत की जाती है। तालिका 1.3. को अवलोकन करने पर यह भी स्पष्ट होता है कि थारू जनजाति किशोरी छात्राओं का मध्यमान (=34.00) स्तर की बुक्सा जनजाति की किशोरी छात्राओं के मध्यमान (=29.9) से अधिक था। इसका कारण यह है कि थारू जनजाति की किशोरी छात्राओं में संवेगों पर नियंत्रण की क्षमता धीरे–धीरे बुक्सा जनजाति किशोरी छात्राओं की अपेक्षा संभवतः अधिक विकसित हो रही हैं।

शोध परिणामः प्रस्तुत शोध कार्य के परिणाम सारांश रूप में निम्नवत प्रस्तुत हैं–

1. अधिकांश किशोरी छात्राओं (55%) में मध्यम स्तर की संवेगात्मक स्थिरता पायी गयी।
2. केवल 11.67 प्रतिशत थारू छात्राओं तथा 8.33 प्रतिशत बुक्सा छात्राओं में उच्च स्तर की भावानात्मक स्थिरता पायी गयी।
3. शोध अध्ययन के परिणाम यह प्रदर्शित करते हैं कि थारू एवं बुक्सा जनजातीय किशोरी छात्राओं की संवेगात्मक स्थिरता मे अंतर होता है। थारू जनजाति की किशोरियों की संवेगात्मक स्थिरता का स्तर बुक्सा जनजाति की किशोरियों से अधिक अच्छा पाया गया है।
4. निष्कर्ष एवं शैक्षिक निहितार्थ : प्रस्तुत शोध कार्य में जनजातीय किशोरी छात्राओं के मध्य मानसिक स्वास्थ्य के संवेगात्मक स्थिरता परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है। शोध परिणाम दर्शाते हैं, कि थारू एवं बुक्सा जनजातीय किशोरी छात्राओं के मध्य संवेगात्मक स्थिरता में सार्थक अंतर है। साथ ही बुक्सा जनजाति की छात्राओं में अधिक संवेगात्मक अस्थिरता पायी गयी। संवेगात्मक स्थिरता तनावपूर्ण परिस्थितियों में संवेगों में संतुलन बनाए रखती है। यह स्वयं की क्षमताओं में विश्वास करने और आत्मविश्वास बढ़ाने में सहायता करती है। जनजातीय किशोरी छात्राओं को संवेगों पर नियंत्रण से संबंधित शिक्षा तथा प्रशिक्षण की आवश्यता वर्तमान समय मे ंदेने की अत्यधिक आवश्यक है जिससे वे पूर्ण आत्मविश्वास के साथ जीवन में आने वाली कठिन परिस्थितियों तथा चुनौतियों का सामना निर्भयता के साथ स्वयं कर सके, अधिक सशक्त व आत्मनिर्भर बन सके, मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बने तथा समाज में महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त कर सके।

सन्दर्भ सूची

1- Aleem, S. (2005). Emotional Stability Among College youth. Journal of the India Academy of Applied Psychology, vol.1 (3), pg.430-438.

2- Chaubey,S. et, al. (2017). A Study of Emotional Stability Among Children in Sultanpur City. IJHS, vol. 3(2), pg.284-288.
3- Dhoundiyal, V.R. (2006). Emotional Instability Questionnaire. Faculty of Education, K.U. Campus, Almora.
4- Khurshid, Saba and Khurshid, S. (2018). Emotional Stability Among College Youth with Reference to the Gender. Sci.Int.(Lahore). Vol.30(4), pg.615-618.
5- Kumar, P. (2012). A Study of Emotional Stability and Socio-Economic Status of Students Studying in Secondary School. Child Development Perspect, vol.06 (2), pg.129-135.
6- Kumaravelu, G. (2018). Emotional Stability of High School Student in Relation to Their Selected Variables, JETIR, Vol.5(1), pg. 167-169.
7- Madhvan, V. (2016). Emotional Stability and Adjustment Perspective of Mental Health Among Rural School Students in Tiruchirapalli District. IOSR-JHSS, vol.5(7), pg.44-47.
8- Maheshwari, A. and Gujral, H.K. (2021). Emotional Stability: A Contributory Factors. The International Journal of Indian Psychology. Vol.9, Issue 4, pg.846-857.
9- Matheen, W. (2011). Parent Child Relationship and Emotional Maturity of City College Girls. Golden Research Thoughts, vol.1. Issue.1, pg.1-4.
10- Pandey, S. et, al. (2017). Emotional Stability: A Study on Adolescent Students of Bhilai, India. Research Journal of Management Science. Vol.6(9), pg.17-20.
11- Rawal, V.R. (1983). Personality Adjustment and Attitude Towards Authority of Emotional Disturbed Adolescent in their Home and School Environment. Ph.d ,Thesis, Faculty of Education, Kumaon University, Campus Almora.
12- Rodriguez-Ramos, et, al. (2021). Emotional Stability is related to 2D:3D and Social Desirability in Women: Possible implications on subjective well-being and psychopathology. PLoS one,16(3).
13- Roul, S.K. And Bihari, S. (2016). Mental Health of School Going Boys and Girls Adolescents in Secondary School of Delhi. P Indian P ARIPEX Journal of Research, vol.4 (6).
14- Shah, K. Mann S, Singh, R. et.al. (2020). Impact of Covid-19 on the Mental Health of Children and Adolescents. Cureus.12 (8), pg.1-6
15- Sangwan, K. and S. (2020). A Study of Emotional Stability of 8-10 years old in Hisar City. IAAST. Vol.11 (1). Pg.80-84.
16- Santosh, S. et, al. (2020). Assessment of Mental Health and Emotional Stability, IJERT, vol.9, issue 05, pg.397-401.

17- Wani, A.S. et, al. (2016). Emotional Stability Among Annamalai University Students. The International Journal of Indian Psychology, 3(4), pg. 119-123
18- World Health Organization. Mental Health in School: A manual (2021), World Health Organization Eastern Mediterranean.
19- Zapata, A. (2015). The Emotional Stability and Emotional Maturity of Fourth year Teacher Education Students of Bulacan State University. Journal of Social Sciences & Humanities Research. Vol.1, issue 1, pg. 1-5.

Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 4
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

सत्यजित रे : साहित्यिक गरिमा की फिल्मों के महान सर्जक

सुन्दरम आनन्द
शोधार्थी ,जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

Article Info

Publication Issue :
July-August-2023
Volume 6, Issue 4

Page Number : 23-27

Article History
Received : 01 Aug 2023
Published : 13 Aug 2023

सारांश : जिनकी पहली ही फिल्म को तक़रीबन एक दर्जन अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से नवाज़ा गया था। वे चार्ली चैप्लिन के बाद सिनेमा से जुड़े अकेले शख़्स थे, जिन्हें ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी ने 'डॉक्टरेट ' की मानद उपाधि से सम्मानित किया था। कांन्स ,वेनिस ,बर्लिन और ऑस्कर सरीखे दुनिया के प्रतिष्ठित फिल्म पुरस्कारों से सम्मानित होने वाले वे अकेले भारतीय फ़िल्मकार थे। अपने पूरे करियर में बनाए गए कुल तीन दर्जन फिल्मों के लिए उन्हें 32 बार राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार मिले। 'भारत रत्न' पाने वाले वे अबतक के एकमात्र फिल्म निर्देशक हैं। यह मुख़्तसर सा बायोडाटा दुनिया के मानचित्र पर भारतीय फिल्मों को स्थापित करने वाले उस फ़िल्मकार का है,जिसे करीब से जानने वाले 'माणिक दा' के नाम से और दुनिया के लोग सत्यजित रे (राय) के नाम से पहचानते हैं।

मूलशब्द : सिनेमा, यथार्थवादी, साहित्य, प्रयोगशील, प्रासंगिकता इत्यादि।

प्रस्तावना : आखिर ऐसा क्या था सत्यजित रे के काम में,जिसे पूरी दुनिया में जाना और सराहा गया ? जिसके लिए महान जापानी फ़िल्मकार अकीरा कुरोसावा यहाँ तक कह बैठे–

"रे की फिल्मों को दखे बिना रहना, चाँद और सूरज को देखे बिना रहना है।" [1]

विशिष्ट फ़िल्मकार- यूँ तो 1955 में फिल्म 'पॉथेर पांचाली' से शुरू हुआ सिनेमाई सफर आख़िरी फिल्म 'आगंतुक'(1992) तक कुल 37 फिल्मों का रहा । लेकिन उन्हें 'अपू ट्राइलॉजी' के नाम से मशहूर शुरुआती तीन फिल्मों ('पथेर पांचाली', 'अपराजितो, और 'अपुर संसार') से ही विश्व सिनेमा के अग्रणी फ़िल्मकार के रूप में प्रतिष्ठा मिल गयी थी।

दिलचस्प बात यह है कि 'पॉथेर पांचाली' बनाने से पहले रे के पास न तो फिल्म–निर्माण का कोई अनुभव था और न ही यथार्थवादी फिल्मों का कोई बेहतर भारतीय प्रतिमान ही सामने था। लेकिन 'बंगाल रेनेसाँ' से प्रभावित पारिवारिक पृष्ठभूमि , शांतिनिकेतन में रहते हुए विकसित हुई कला–दृष्टि तथा अपने साथियों के साथ बनाए गए फिल्म क्लब में विश्व–सिनेमा से परिचित होने के मौके ने उन्हें संवेदनशील फिल्म दर्शक ज़रूर बना दिया था। वे जॉन फोर्ड ,विली वाइल्डर ,ऑर्सन वेल्स, फ्रैंक कैप्रा जैसे हॉलीवुड के दिग्गज फिल्मकारों के कामों को सूक्ष्मता से देखने–जानने लगे थे।

लेकिन फ्रेंच–अमेरिकी फ़िल्मकार ज्यां रेनुवां से मुलाकात और एडवरटाइजिंग एजेंसी में नौकरी के दौरान लन्दन में रहते हुए इतालवी दिग्गज विट्टेरियो डी सीका की फ़िल्म 'बाइसिकल थीव्स ' देखना, उनके जीवन को बदल देने वाली

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

घटनाएं रहीं । इन दोनों घटनाओं ने फ़िल्मकार बनने के उनके इरादे को तो मजबूत किया ही साथ फिल्म निर्माण के लिए यथार्थवादी 'अवांगार्द 'दृष्टि भी प्रदान की।

अपनी नयी सिने –दृष्टि के साथ सत्यजित रे ने तत्कालीन फिल्म निर्माण के तौर तरीके के विपरीत ग़ैर–पेशेवर अदाकारों और टेक्निशियन्स के साथ आउटडोर लोकेशन पर रियल लाइट में फिल्मांकन किया। इस प्रकार दुनिया में भारतीय सिनेमा को नई पहचान देने वाली फिल्म 'पॉथेर पांचाली' सामने आई।

सत्यजित रे इस मायने में भी अलग थे कि उनकी फिल्मों का कलेवर 'ललित कलाओं के कोलाज' सरीखा होता था। शायद यही वजह है कि मशहूर अमरीकी फ़िल्म निर्देशक मार्टिन स्कॉर्सेज़ी ने कहा भी है –" रे की फिल्मों में काव्य और सिनेमा को मिलाने वाली रेखा एक दूसरे में घुलीमिली सी नज़र आती है।"[2]

साहित्य के साथ जुगलबंदी- सत्यजित रे पर लिखे अपने एक संस्मरण में हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार कुँवर नारायण ने लिखा है–" उनका (रे) सिनेमा साहित्य के साथ अंतरंग विनिमय का अनोखा दस्तावेज़ है"।[3] उनके इस कथन की तस्दीक इस बात से की जा सकती है कि 37 फिल्मों की रे की सिने–फ़ेहरिश्त में तकरीबन दो दर्जन फिल्में ऐसी हैं, जिनका मज़मून किसी न किसी साहित्यिक कृति से जुड़ा है। इन फिल्मांतरित कृतियों में उन्होंने ज्यादातर बांग्ला साहित्य की रचनाओं को आधार बनाया है। टैगोर, विभूति भूषण,ताराशंकर बंद्योपाध्याय, सुनील गंगोपाध्याय आदि की रचनाओं का उन्होंने सफल और संजीदा फिल्मांकन किया है।

रे ने केवल दो गैर–बांग्ला फिल्में बनायीं या यूँ कहें कि उन्होंने हिन्दी (हिंदुस्तानी) में दो फिल्में बनायी हैं– 'शतरंज के खिलाड़ी' 1977) और 'सद्गति '(1981)। हिंदी के कथा– सम्राट प्रेमचन्द की इन्हीं नामों से लिखी कहानियों के सिने–रूपांतरण के रूप ये फिल्में बेशक रे की सर्वश्रेष्ठ फिल्में नहीं हैं लेकिन कई मामलों में ये उनकी अन्य कृतियों से अलहदा ज़रूर हैं। इन फिल्मों के बाबत उनकी जीवनी 'सत्यजित रे : द इनर आइ' में एंड्रयू रॉबिंसन ने लिखा है:–

" अद्भुत सेटिंग्स और उनकी फिल्मों के लिहाज से बड़े प्रोडक्शन वैल्यू के साथ इस फिल्म में ब्रिटिश राज का सीधा चित्रण और नामचीन अंग्रेज अभिनेताओं का उपयोग ऐसे गुण हैं जो इस फिल्म (शतरंज के खिलाड़ी) को उनकी अन्य फिल्मों से अलग करते हैं "।[4]

वहीँ 'सद्गति (1981) के बारे में रॉबिन्सन का मानना है :–

"रे ने(प्रेमचंद की) इस कहानी के फिल्मांतरण में काफी कम बदलाव किये हैं। यह उनकी अपने मूल स्रोत के प्रति सबसे ईमानदार(यथातथ्य) फिल्म है "।[5]

फिल्मांतरण और रे : कुछ अंत:सूत्र - सत्यजित रे महान फ़िल्मकार तो थे ही,साथ ही वे सिनेमा के व्याकरण और सिद्धांतों को लेकर सजग रहने वाले प्रयोगशील फ़िल्मकार भी थे। शायद इसीलिए उनकी फ़िल्में आजतक गंभीर विमर्शों की माँग करती हैं। तभी तो श्याम बेनेगल जैसे आला फ़िल्मकार भी उनके बारे में कह उठते हैं:– "मैं कभी उनकी फ़िल्में देखकर नहीं थकता। यदि आप उनके समकालीनों का काम देखें तो आप उनमें पुरानापन महसूस करना शुरू करने लगते हैं। लेकिन रे के काम के साथ पुरानेपन का एहसास नहीं होता।" [6] उनकी फ़िल्में सिने–प्रेमियों ,फिल्मकारों और अध्येताओं के लिए सिनेमा–अध्ययन की सन्दर्भ सामग्री बनकर सामने आती हैं ।

बकौल कुँवर नारायण :– "समग्रता में उनकी (रे) फिल्मों का संसार एक बड़ी प्रबंध रचना की तरह विविध और विशद है...वे(उनकी फ़िल्में) उच्च कोटि के साहित्य के स्तर पर हमारे मन और चिंतन को आंदोलित करती हैं। "[7]

जिन फिल्मों का रे ने फिल्मांतरण किया है वे 'फिल्मांतरण के विभिन्न सिद्धांतों' को समझने के सटीक उदाहरण हैं। उनकी फ़िल्मांतरित कृतियों के बारीक़ अध्ययन से हम फिल्मांतरण की तकनीकी प्रक्रिया और उसके सामाजिक–

सांस्कृतिक प्रभाव के विविध आयामों की समझ विकसित कर सकते हैं।कथा-साहित्य के उनके सिनेमाई रूपांतरण इस बात की नज़ीर हैं कि साहित्य और सिनेमा के बीच के विनिमय का फलक महज लिखे शब्दों का स्क्रीन पर बोलते चित्रों में परिवर्तन भर नहीं है, बल्कि यह दो कलाओं के बीच एक सक्रिय संवाद भी है। इसके ज़रिये कला और संस्कृति के बारे में दो कलाकारों की समझ भी प्रतिध्वनित होती है। रे के सिनेमा में मौजूद इन गुणों के बारे में अमर्त्य सेन ने लिखा है :-
" सत्यजित रे का काम भारत ही नहीं बल्कि दुनिया भर की संस्कृतियों तथा उन संस्कृतियों के बीच चलने वाले उपयोगी विमर्शों के बारे में गहरी समझ पैदा करता है।"[8] टैगोर से लेकर ताराशंकर बंद्योपाध्याय तक या फिर विभूतिभूषण से लेकर सुनील गंगोपाध्याय तक अलग-अलग दौर और शैली के रचनाकारों की कृतियों को अपनी रचनात्मक दृष्टि में ढालकर उन्होंने समकालीन और सार्वभौमिक 'सिनेमाई पाठ' बनाकर दुनिया के सामने पेश किया।

प्रेमचंद वाया रे - यूँ तो शुरुआती दिनों से ही सिनेमा पर साहित्य की स्पष्ट छाप रही है। तभी तो आइजेंस्टाइन और ग्रिफिथ के साथ डिकेन्स को भी सिने-कला के प्रमुख सूत्रधारों में गिना जाता है। फिल्मांतरण को लेकर जब दुनिया भर में विमर्श की शुरुआत हुई तो उसमें 'मूल कृति के प्रति ईमानदारी' (Fidelity) को सबसे ज़्यादा तरज़ीह दी गयी। लेकिन जैसे-जैसे एक कला के रूप में सिनेमा को मान्यता मिलनी शुरू हुई ,उसके तकनीक ,विन्यास और व्याकरण को लेकर नए-नए प्रयोग शुरू हुए तो फिल्मांतरण के प्रति भी समालोचकों की दृष्टि बहुआयामी होने लगी। साहित्यिक कृति में लेखक की केन्द्रीयता के तर्ज़ पर जब सिनेमाई कृति में निर्देशक की केन्द्रीयता को लेकर बहस चली तो इन बहसों ने फिल्मांतरण के प्रति विभिन्न धारणाओं को विकसित करने में अहम भूमिका निभायी। इन बदलावों को रेखांकित करते हुए क्रिस्टोफर ओर्र ने कहा है :- "आज मुद्दा यह नहीं है कि रूपान्तरित फिल्म अपने मूल स्रोत के प्रति ईमानदार है या नहीं बल्कि चुनी गयी सामग्री के प्रति फ़िल्मकार का अप्रोच और सिनमाई कृति में मूल कृति में निहित भाव की अभिव्यक्ति को देखना ज़्यादा अहम हो गया है।"[9]

इसी परिप्रेक्ष्य में अमेरिका के नामचीन स्क्रीनप्ले लेखक डेविट बॉडीन की यह मान्यता भी उल्लेखनीय है कि "किसी साहित्यिक कृति का सिनेमा में रूपान्तरण बेशक एक रचनात्मक उपक्रम है, लेकिन यह प्रक्रिया उस कृति के द्वारा स्थापित होने वाले मूड की पुनर्रचना तथा (उस कृति की)एक खास किस्म की चयनात्मक व्याख्या कर पाने की क्षमता की मांग करती है "।[10] रे ने प्रेमचंद की जिन दोनों कहानियों 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'सद्गति) को सिनेमा के परदे पर उकेरा है,उन्हें बेहतर ढंग से समझने में उक्त दोनों उद्धरण माकूल मालूम पड़ते हैं।

शतरंज के खिलाड़ी (1977) की अगर बात करें तो यह कई मायनों में रे की नायाब फिल्म है, एक तो यह उनकी पहली हिंदी फिल्म है ही ,साथ ही यहाँ वे पहली बार ऐतिहासिक कथावस्तु पर अ-रैखीय कथाविन्यास के साथ अपनी सिने-अभिव्यक्ति करते नज़र आते हैं। इनके अलावा रे यहाँ कहानी के अंशों तथा बिम्बों के ज़रिये पहली बार सेक्सुअलिटी के सवालों को भी सामने लाने की कोशिश करते दिखे हैं। अपने इस सिनेमाई रूपांतरण में रे ने बिना संदेह प्रेमचंद की इस कहानी को सार्थक विस्तार दिया है। जहाँ प्रेमचंद ने अपनी कहानी में बेबाक रूप से लखनऊ और वहां के दो काल्पनिक नवाबों के ज़रिये, किसी ऐतहासिक पात्र या घटना का सहारा लिए बग़ैर (बस कहानी की पहली पंक्ति में उन्होंने यह संकेत भर किया है - "वाजिद अली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था।"[11] 19 वीं सदी के मध्य के भारत की पतनशील प्रवित्तियों की एक 'परिस्थिति' भर चित्रित की है। वहीँ रे ने प्रेमचंद के बरअक्स अपनी फिल्म में उस दौर के भारत की पतनशील सामंतवादी व्यवस्था को ब्रिटिश राज की उभरती हुई औपनिवेशिक व्यवस्था के सामानांतर रखकर प्रस्तुत किया है। उनकी फिल्म में लखनऊ की तहज़ीब और उस दौर के वहाँ के ऐतिहासिक सन्दर्भों को बेहद बारीकी से पिरोया गया है।इस अर्थ में उनकी फिल्म प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाड़ी ' और मौलाना अब्दुल हलीम शरर

की 'गुज़श्त: लखनऊ ' के बीच एक संयोजक के मानिंद सामने आती है। उन्होंने बाकायदा वाजिद अली शाह के किरदार को न केवल अलग से गढ़ा है, बल्कि उस दौर की वास्तविक घटनाओं का सहारा लेकर उसे एक संश्लिष्ट चरित्र बनाने में भी वे सफल हुए हैं । भाषायी स्तर पर कहानी में जहाँ प्रेमचंद ने अपनी चिरपरिचित स्वाभाविक शैली को ही अपनाया है (हालाँकि ' शतरंज की बाज़ी ' नाम से प्रकाशित इसी कहानी को उर्दू में लखनऊ के आम भाषायी लहज़े के करीब रखा है), वहीँ रे की फिल्म में लखनऊ की संस्कृति के प्रामाणिक चित्रण में 'लखनवी ज़बान ' ने खासी भूमिका निभाई है।

'शतरंज के खिलाड़ी' के साहित्यिक और सिनेमाई पाठ में इस जोड़-घटाव के पीछे शायद दो महान सर्जकों के 'क्रिएटिव विजन ' में मौलिक अंतर की अहम भूमिका है। इस फ़र्क़ की ओर इशारा करते हुए कुँवर नारायण ने लिखा है कि "राय (रे) की दृष्टि मूलत: लिरिकल है,जबकि प्रेमचंद अपनी बात बेबाकी और दो टूक ढंग से कहते हैं : उसमें लाग-लपेट नहीं ,ज़िन्दगी की बेतकल्लुफ मौजूदगी है। उनकी कला इस हद तक ज़िन्दगी से घुली-मिली रहती है कि वह अलग से दिखाई नहीं देती। जबकि राय की कला अपने होने को छिपाती नहीं यथार्थ के साथ-साथ अपनी भी एक स्पस्ट पहचान बनाती चलती है।"[12] वहीं, दूसरी तरफ जब हम 'सद्गति'(1981) का रुख करते हैं तो पाते हैं कि यहाँ रे ने फिल्मांतरण के 'यथातथ्य प्रस्तुति '(Fidelity) की शास्त्रीय शैली को अपनाया है। शायद इसीलिए इसे रे की 'प्रेमचंद की तकनीक पर बनी फिल्म' भी कहा जाता है। 'शतरंज के खिलाड़ी' तुलना में यहाँ 'सिनेमाई पाठ ' की अपेक्षा 'साहित्यिक पाठ ' ज़्यादा मुकम्मल और बेलाग रूप में अभिव्यक्त होता नज़र आता है। कहानी में जहाँ प्रेमचंद का स्वर निर्भ्रांत,विक्षुब्ध और नग्न यथार्थ की प्रस्तुति करने वाला वाला है, वहीँ फिल्म में रे ने बिम्बों ,प्रतीकों और संकेतों का सहारा अधिक लिया है। जिसकी वजह से शायद कथ्य में मौजूद 'पॉलिटिकल कंटेंट ' की तीक्ष्णता थोड़ी मंद हुई है।ऐसा हो सकता है कि फिल्म की कम अवधि तथा दूरदर्शन से लिए गए आर्थिक सहयोग के कारण भी शायद रे उतनी रचनात्मक आज़ादी न ले पाए हों, जो इस प्रकार के विषयों को खुलकर बरतने के लिए अपेक्षित होती है। इसके बावजूद बिना किसी संदेह के इस फिल्मांतरण में भी रे की इस दृष्टिकोण की पुष्टि होती है कि "सिनेमा मूलत: एक दृश्य माध्यम है और कथ्य में मौजूद वातावरण की अक्षुण्णता एक अच्छी फिल्म की मौलिक पहचान होती है।" [13] 'सद्गति' (1981) में एक अच्छी फिल्म की यह मौलिक विशेषता निश्चित रूप से मौजूद है।

रे के फिल्मांतरण की प्रासंगिकता - पहले सत्यजित रे मेमोरियल लेक्चर में बोलते हुए जावेद अख्तर ने कहा था "कोई चीज़ तब प्रासंगिक होती है जब उसकी प्रचूर मौजूदगी हो या उसकी भरपूर कमी हो।"[14]

जावेद साहब की इस टिपण्णी को सामने रखकर देखें तो दृश्य-ध्वनि,शब्द-संगीत ,भाव-भाषा की काव्यमय जुगलबंदी के साथ रे की फ़िल्में शाश्वत मानवीय मूल्यों को सामने लाती हैं। फिल्मों के लिए जब भी स्रोत के रूप में उन्होंने साहित्यिक कृतियों की तरफ रुख किया तो कथावस्तु में चित्रात्मकता के साथ उसमें 'जीवन-रस' की मौजूदगी विषय चयन की उनकी बुनियादी कसौटी रही है। जिस प्रकार 'साहित्य का उद्देश्य' में प्रेमचंद कहते हैं - "हम जीवन में जो कुछ देखते हैं या जो कुछ हम पर गुज़रती है ,वही अनुभव और चोटें कल्पना में पहुँचकर साहित्य-सृजन की प्रेरणा करती है।"[15] ठीक उसी तर्ज़ पर रे भी यह मानते हैं कि "कला के प्रति हमारी सोच में दरअसल जीवन के प्रति हमारा नजरिया ही सबसे बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित होता है।"[16] कलादृष्टि के स्तर पर समानता के साथ रे के रचना संसार में भी हम छवियों तथा भावों के मामले में 'प्रेमचन्दीय' साफगोई और प्रभावशीलता रेखांकित कर सकते हैं। उन्होंने अपनी कृतियों के ज़रिये हमारे आसपास मौजूद जीवन के राग-रंगों को इस तरह नियोजित किया है कि वे बार-बार संदर्भवान होकर सामने आती हैं। कुँवर नारायण ने शायद इसीलिए सत्यजित रे के सिनेमा के बारे में यह लिखा है कि "राय (रे) की फ़िल्में इसलिए महान नहीं हैं कि वे

साहित्य की स्पर्धा में अपनी एक अलग दुनिया रचती हों, वे विशिष्ट हैं क्योंकि वे उच्च कोटि के साहित्य के स्तर पर हमारे मन और चिंतन को आंदोलित करती हैं।" [17] अत: सत्यजित रे जिन मुद्दों और समस्याओं को अपनी रचनात्मक दृष्टि के सहारे हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं, वह अधिक भयावहता के साथ आज भी मौजूद हैं और यही उनको और उनके कार्य को अधिक प्रासंगिक बना देता है।

सन्दर्भ :

1. वेबसाइट :- satyajitray.org
2. पत्रिका :- फ्रंटलाइन ,20 दिसंबर1991
3. नारायण ,कुँवर . लेखक का सिनेमा . राजकमल प्रकाशन ,2017
4. रॉबिन्सन ,एंड्रयू . सत्यजित रे : द इनर आइ . आई बी टॉरियस ,2004
5. वही.
6. डॉक्यूमेंट्री :- सत्यजित रे एंड आय (श्याम बेनेगल ऑन सत्यजित रे). सत्यजित रे फिल्म एंड स्टडी सेंटर
7. नारायण , कुँवर . लेखक का सिनेमा . राजकमल प्रकाशन , 2017
8. सेन, अमर्त्य . द आर्ग्युमेंटेटिव इंडियन . फैरर ,स्ट्रॉस ,जेरॉक्स ,2005
9. ओर्र ,क्रिस्टफर . द डिस्कोर्स ऑफ़ एनालिसिस . वाइड एंगल 6 ,नं 2 ,1984
10. प्रेमचंद . (सं) साहनी ,भीष्म . प्रतिनिधि कहानियाँ . राजकमल प्रकाशन ,2014
11. (सं) ब्रॉडी, लियो .कोहेन ,मार्शल . फिल्म थ्येरी एंड क्रिटिसिज़्म : इंट्रोडक्ट्री रीडिंग्स (7 वां संस्करण) . ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस , 2009
12. नारायण ,कुँवर . लेखक का सिनेमा . राजकमल प्रकाशन ,2017
13. रे ,सत्यजित . (सं) रे ,संदीप . डीप फोकस : रिफ्लेक्शन्स ऑन इंडियन सिनेमा . हार्पर कॉलिंस ,2017
14. फर्स्ट सत्यजित रे मेमोरियल लेक्चर (साभार : यूट्यूब)
15. प्रेमचंद . कुछ विचार . लोकभारती प्रकाशन ,2018
16. रे ,सत्यजित . (सं) रे ,संदीप . डीप फोकस : रिफ्लेक्शन्स ऑन इंडियन सिनेमा . हार्पर कॉलिंस ,2017
17. नारायण ,कुँवर . लेखक का सिनेमा . राजकमल प्रकाशन ,2017

Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 4
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

Marginality in Japanese Society : Globalisation, Nojukusha, and Homelessness in Contemporary Japan

Arpan Banerjee
Research Scholar, Department of East Asian Studies, University of Delhi, New Delhi, India

Article Info

Publication Issue :
July-August-2023
Volume 6, Issue 4

Page Number : 28-40

Article History
Received : 01 Aug 2023
Published : 13 Aug 2023

ABSTRACT - This paper focuses on the hiyatoi (day labourers) and how they became nojukusha (persons who sleep outside, people with rough sleep). The hiyatoi are people who make a living from informal jobs, such as day jobs, street jobs, or contract jobs at construction sites and in factories. During the 'Archipelago Remodeling', the period of high economic growth in the 1960s, the day workers took part in the construction of highways, bullet trains, etc. When these workers reached retirement age and Japan was severely impacted by the recession, they were unable to find new employment and were forced to spend their nights in flop houses in order to work in the shaky construction industry. If they lost their jobs, they would also lose their homes. Due to their structural weakness, they were more easily identified as homeless people.

KEYWORDS : Hiyatoi, Ikizurasa, Nojukusha, Yoseba, Deyosebisation, Globalisation, InternetCafé Refugees.

Introduction - Despite being one of the richest nations in the world, Japan still continues to have a sizable share in global economy. However, its wealth is the result of hidden sacrifices. One of them is homelessness. In Japanese, the definition of "homeless" (Hômuresu) is narrow. In fact, it is almost entirely limited to homeless street people. Tokyo Metropolitan Government (TMG), which has had the most homeless people in Japan after Osaka City, has defined the homeless as "street dwellers" (Rojôseikatsusha), meaning "people who live everyday life in public spaces, such as roads, parks, riversides, stations, etc. The majority of homeless individuals in Japan are men; they are overwhelmingly middle-aged and old; and they have the following characteristics: the majority had previously held blue-collar jobs, and many had spent years working as day laborers or in irregular jobs.This paper will analyse the impact of Globalisation on the hiyatoi (day-labourers and casually employed unskilled workers) in Japan. It will throw light on the phenomenon of deyosebisation and how globalisation has led to deyosebisation in major cities of Japan leading to unemployment which has further exacerbated homelessness.

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

Background- Young workers from the agricultural, coal, and small trades, rather than migrant labor, were used to fill the needs of large construction projects and the expanding manufacturing industry during the period of economic stability and bubble economy in the 1970s and 1980s when State-controlled public investment first started. Many of these blue collar workers were forced to do the “3K” jobs [kitanai(dirty), kiken(dangerous), kitsui(difficult)]. These workers moved from job to job as day- and contract workers in construction sites and factories. When no jobs were available, the jobless assembled in yoseba districts in large cities (San’ya in Tokyo, Kamagasaki in Osaka, etc.), where day- and contract workers co-habited in flophouses (doya), obtained jobs from brokers, and commuted from yoseba to worksites. There are many reasons behind the increasing homelessness among the hiyatoi turning them into nojukusha (persons who sleep outside, people with rough sleep). The doya, which the hiyatoi were housed in locally and which provided temporary shelter and community utilities, are continuously making way for higher grade buildings, leaving them with limited accommodation options. This is an example of economic transition. The hiyatoi are denied access to communal and welfare programs that once helped them live because they are becoming more and more transient and lack a permanent location. (Fowler 1996)

The increasing homelessness of hiyatoi turning them into nojukusha, presents a compelling portrait of a community in transition, undergoing downward mobility and declassification. Despite the ongoing issues, people in these communities also feel conflicted emotions of "misery and pride." As an example of the latter, the annual Spring Offensive, a ritualized event at New Year's time, is an effort to unite community members who are self governing and collectively try to prevent deaths from freezing due to lack of shelter. There is a summer festival as well in which students and some union members join the homeless during these gatherings. The term 'social movement' applied to the communities of homeless men provides seems apt when considering all of their activities (Gill, 2001, pp. 180-185). From the late 1980s, Japanese employers also began to employ foreign workers to combat the acute shortage of unskilled labor that "threatened to paralyze many small- and medium-sized businesses, especially in the manufacturing sector," which was partly caused by an ageing population and a persistent effort to contain wage costs (Tsuda, 1999, p.687). Brazilians with Japanese ancestry were initially sought for by employers to fill positions, and later their spouses, as they shared Japanese work ethics, cultural traditions, and physiognomy. Because they were thought to work harder and longer hours and were "more willing to do overtime, night shifts, and difficult tasks," they were given preferential treatment over Japanese part- time workers (Tsuda, 1999, p.596). Asian trainees and interns, particularly those from China, Vietnam, Indonesia, and the Philippines, have become more and more important to Japanese employers since the 2000s across a variety of industries, but especially tiny, "family-run manufacturers and employers in the farming and fishing industries"(Shipper, 2011, p.506). It is pertinent to talk more about the intern program here. Despite being conducted covertly, the act of importing unskilled foreign labor is illegal in Japan. As a backdoor to importing foreign unskilled labor, the Technical Intern Training Programme was developed in 1993 (updated in 2009 and 2014). Typically, internships last three years. In Japan's "foreign technical intern" program, which is supported by the Japan International Training Cooperation Organization, a foundation funded by the government and member groups. (Harvey and Slodkowski, 2014).

According to the most recent government statistics, Japan has roughly 155,000 technical interns. The majority—nearly 70%—come from China, where some labor recruiters demand that applicants pay bonds totaling thousands of dollars in order to work in Japan (Harvey and Slodkowski, 2014). Interns toil in fields, metal-working shops, food and clothing manufacturers, and garment factories. Workplaces where labor abuse is pervasive include: According to a 2012 assessment by labour inspectors, 79% of the businesses that used interns were in violation of labor rules (Harvey and Slodkowski, 2014). According to Harvey and Slodkowski (2014), the 'trainee system' in Japan might actually be a cover for a sweatshop, as international interns are forced to shoulder the burden of Japan's labor shortage. Some interns are unable to endure the suffering and flee their "employer" before their internship is complete, becoming illegal employees. The emergence of this trainee system has exacerbated the import of cheap labour from China thereby further endangering the employment opportunities of the already beleagured hiyatoi. This has according to Hdie Aoki further propelled the deyosebisation of the hiyotai, resulting in many of them becoming nojukusha.

Deyosebisation and Homelessness- A part of the younger population known as the "working poor" has grown over the past several years. The majority of them have intermittently held part-time jobs. Temporary workers put forth just as much effort as regular employees, but they lack benefits and security. A yoseba is a segregated district where labour recruiters deliver jobs to day- labourers who are mostly single men. Kamagasaki is the biggest yoseba in Japan. The labour recruiters are usually agents of companies who are the actual employers or employers with small-sized enterprises, themselves mostly in the construction industry. The process by which day laborers leave the yoseba (the urban day labor market) and end up on the streets is known as deyosebization.There are four stages throught which the condition of workers in Japan and particularly yosebas like Kamagasaki in Osaka can be analysed. In the first stage, there was the high-growth during the 1960s and the first half of the 1970s. Two industries—heavy industry and manufacturing industry—led the rapid economic growth and many individuals were drawn into both the thriving businesses and pushed away from the stagnating industries like agriculture. During this period the number of day-labourers increased markedly aqnd it was in this era that Kamagasaki in Osaka became the biggest day-labourers' district in Japan. Many young labourers flowed into these yosebas. Day-labourers worked in such industries as construction (33.8 per cent of the whole in 1967), manufacturing (26.9 per cent) and transport (6.1 per cent) (NLWC data; quoted by Shima, 1999, p. 59).

The second phase, which spanned the latter half of the 1970s and the 1980s, was characterized by slower economic growth and the so-called bubble economy. The economic growth rate fell steadily over the first half of this period. Manufacturing and heavy industry both saw declines. The production system was streamlined and manufacturing became even more automated. The service sector, on the other hand, grew. Due to a rise in orders from the service sector, the construction industry also kept expanding. These trends gave way to the bubble economy in the 1980s, when overspeculation in business occurred, led by land speculation and a policy of financial expansion among the banking agencies. Many day labourers from yosebas like Kotobukicho in Yokohama and Kamagasaki in Osaka, were pushed out from manufacturing

industry and absorbed in construction. More recruiters were sent to Kamagasaki by the construction compaments in the business cycle. The early post- bubble economy in the first half of the 1990s was the third stage. In 1993, the bubble economy crashed. All industries experienced a decline in business activity. Many workers left their jobs, quit their jobs, or retired from their employers. The unemployment rate gradually increased. The construction business at this time period helped with employment adjustments by taking on workers who were turned away from other industries. Public investment by the national and local governments was stepped up in an attempt to spend the economy out of recession. Demand for new buildings from the service industry increased too. Construction orders from private business amounted to 60.6 per cent of all orders, with non-man- ufacturing business accounting for 82.5 per cent of the whole of private business (MCA, 1999, p. 328). The number of construction workers increased as a result. However, day- labourers decreased markedly because technical innovations cut the demand for them (Hippo, 1992, pp. 61-71). The number was 18 836 in 1995 - that is, a 27.1 per cent decrease from 1990 (KRC, 1999). Most day- labourers (96.0 per cent in 1995) continued to engage in construction or civil engineering jobs introduced by the NLWC (NCDLU, 1999).

The second post-bubble phase, which spanned the second half of the 1990s, was the fourth stage. The recession persisted. The state of the economy remained unchanged. However, governmental investment fell dramatically. As a result, many construction firms, including some general contractors, filed for bankruptcy. Over 5000 construction companies went bankrupt in Japan in 1997, a 32 per cent increase from 1996 (Asahi , 6 June 1998). Day- labourers decreased from 5,50,000 in 1975 to 3,00,000 in 1997 (NLWC, 1998). Day-labour contracts transacted by the NLWC were 3740 per day in 1995, 3225 in 1996, 2351 in 1997 (NLWC, 1998) and 1864 in 1998 (KDLU, 1999). A day-labourer in yosebas like Kamagasaki and Kotobukicho could work only 6.5 days. summarised as deyosebisation of day-labourers. The number of single-day cash-in-hand labour contracts (genkin shig- oto) transacted yearly by the NLWC at Ka- magasaki changed spectacularly in the last 20 years of the 20th century: 589,982 in 1981, 868,519 in 1985, 1,874,507 in 1989, 889,731 in 1993 and 775,740 in 1997 (data from NLWC; quoted in Nakane, 2002, p. 86). From the late 1980s, Japanese employers also began to employ foreign workers to combat the acute shortage of unskilled labor that "threatened to paralyze many small- and medium-sized businesses, especially in the manufacturing sector," which was partly caused by an ageing population and a persistent effort to contain wage costs (Tsuda, 1999, p.687). Brazilians with Japanese ancestry were initially sought for by employers to fill positions, and later their spouses, as they shared Japanese work ethics, cultural traditions, and physiognomy. Because they were thought to work harder and longer hours and were "more willing to do overtime, night shifts, and difficult tasks," they were given preferential treatment over Japanese part-time workers (Tsuda, 1999, p.596). Asian trainees and interns, particularly those from China, Vietnam, Indonesia, and the Philippines, have become more and more important to Japanese employers since the 2000s across a variety of industries, but especially tiny, "family-run manufacturers and employers in the farming and fishing industries"(Shipper, 2011, p.506). It is pertinent to talk more about the intern program here. Despite being conducted covertly, the act of importing unskilled foreign labor is illegal in Japan. As a backdoor to importing foreign unskilled labor, the Technical Intern Training Programme was developed in 1993 (updated in 2009 and 2014). Typically,

internships last three years. In Japan's "foreign technical intern" program, which is supported by the Japan International Training Cooperation Organization, a foundation funded by the government and member groups. (Harvey and Slodkowski, 2014).

According to the most recent government statistics, Japan has roughly 155,000 technical interns. The majority—nearly 70%—come from China, where some labor recruiters demand that applicants pay bonds totaling thousands of dollars in order to work in Japan (Harvey and Slodkowski, 2014). Interns toil in fields, metal-working shops, food and clothing manufacturers, and garment factories. Workplaces where labor abuse is pervasive include: According to a 2012 assessment by labour inspectors, 79% of the businesses that used interns were in violation of labor rules (Harvey and Slodkowski, 2014). According to Harvey and Slodkowski (2014), the 'trainee system' in Japan might actually be a cover for a sweatshop, as international interns are forced to shoulder the burden of Japan's labor shortage. Some interns are unable to endure the suffering and flee their "employer" before their internship is complete, becoming illegal employees. The emergence of this trainee system has exacerbated the import of cheap labour from China thereby further endangering the employment opportunities of the already beleagured hiyatoi. This has according to Hdie Aoki further propelled the deyosebisation of the hiyotai, resulting in many of them becoming nojukusha.

Table 1. Basic attributes of street homeless people (Tokyo Special Wards).

	2000	2007	2012
Sex			
Male	(97.9)	(98.2)	(90.5)
Female	(2.1)	(1.8)	(4.9)
N.A.			(4.6)
Total	(100.0)	(100.0)	(100.0)
n	709	500	348
Age			
Under 40	(6.7)	(1.6)	(1.4)
Forties	(19.6)	(10.0)	(10.6)
Fifties	(47.9)	(41.2)	(29.0)
Sixties	(22.9)	(39.0)	(40.8)
Seventies & older	(2.8)	(7.8)	(17.5)
N.A.		(.1)	(.6)
Total	(100.0)	(99.7)	(100.0)
N	703	500	348
Average age	54.0	58.9	60.9

Source: Summarized from Toshiseikatsukenkyûkai (2000), Tokyotofukusihokenkyoku (2007), and Ministry of Health, Labor and Welfare (2012).

Figure 2. Number of job offers (monthly average) (left axis) and consultations (right axis) at San'ya Labor Center (1965–2013).
Source: summarized from Johoku Labor-Welfare Center (http://homepage3.nifty.com/johoku/, 16 October 2014).
Numbers of job offers don't include number of direct offers.

Impact of Globalization

Globalization has brought a shift from manufacturing industry to services as reflected in the steady decline in percentage of workers in manufacturing industry was 985, 27.8 per cent in 1990 and 23.8 per cent in 1995 (OPCILD, 2000, p. 1 12) and the percentage of workers in service industries was 20.2 per cent of the whole in 1985, 22.1 per cent in 1990 and 25.1 per cent (OPCILD, 2000, p. 112). The modernization of the manufacturing process and the optimization of labour management brought about by the escalating intra-corporate

competition were further factors contributing to the decline in the manufacturing sector. This led to a decrease in the self-employed and increase in company employees. Labour has been casualized by companies in an attempt to reduce employment costs. Employment received scant attention because the government saw homelessness as a matter of relief and public order rather than an issue of employment (Yoshida 1993, 1994). The private sector did not offer much employment opportunity, either, especially in the formal sector in which even large firms were busy trying to fire, rather than hire, employees. According to the Japanese Institute for Labour Policy and Training, 35.2% of all employees in 2012 were non-regular workers. 54.5 percent of women versus 19.7 percent of men reported working in precarious jobs, over twice as frequently as men. 5 percent of precarious employment consists of temp agency workers, 19. 5 percent is contract or trusted work, 7 percent is other, and 68.5 percent is part-time work.

In Osaka, full-timers made up 80.4% of all employees in 1992 and 74.3% in 1997 (OPCILD, 2001, p. 91). 19.6% of the total workforce in 1992 and 25.7% in 1997 were casual employees, which included day laborers and part-timers (OPCILD, 2001, p. 91). In 1997, causal workers made up one in four employees. Globalization accompanied the chronic recession of Japan's economy. Cities like Osaka, with the large number of small

sized companies and casually employed unskilled workers, was hit seriously by globalization and recession. Many senior yoseba men experienced long-term homelessness as a result of structural changes. These adjustments include the restructuring of welfare systems, the emergence of a gentrification-like phenomenon in yoseba districts, and modifications to subcontracting systems.

Globalisation has further intensified intercorporate competition leading to an increase in business failure and bankruptcy of many companies. Low-income employees do not only experience homelessness after living in flophouses; in fact, many do so after leaving relatively stable housing arrangements, particularly private rental apartments. And just like their employment status, the overall housing status of the homeless declined over time. Urban redevelopment is a phenomenon that has something to do with this. Urban redevelopment takes place as centralized administration is required by economic globalization, which also increases demand for office space for businesses and homes for high-income workers.

Increase in homeless people predominantly single and middle-aged men in places like Kamagasaki in Osaka and Kotobukicho in Yokohama is reflected in the number of single-day cash-in-hand labour contracts (genkin shigoto) transacted yearly by the NLWC at Ka- magasaki which has changed spectacularly in the last 20 years of the 20th century: 5,89,982 in 1981, 868 519 in 1985, 1 874 507 in 1989, 889 731 in 1993 and 775 740 in 1997 (data from NLWC; quoted in Nakane, 2002, p. 86). This phenomenon has been termed as deyosebisation of day laborers by Hideo Aoki. The sharp increase at the end of the 1980s and the sharp decrease in the 1990s bear eloquent testimony to the historical transformation that has been termed as deyosebisation. Changes in the method of management of day-labourers in Kamagasaki in four ways. First, as the demand for day work in the construction industry decreased, the labour recruiters retreat Secondly, the method of labour delivery has diversified. Day laborers used to find employment primarily in Kamagasaki. However, many laborers now find employment through "help wanted" advertisements in newspapers and magazines, as well as in locations outside of Kamagasaki such railway and subway stations, parks, and riverbank regions where many homeless people congregate. Recruiters visit these locations to hunt for day laborers. Thirdly, due to the difficulty in getting construction jobs, many day laborers and homeless persons find employment in the service industry as security guards, luggage handlers, and packers.

Given the decreasing demand for day work, many day-labourers cannot get jobs at all now. Because a day worker cannot register as an active worker, his unemployment insurance is useless. Even if he can register, he cannot get the benefit if he cannot work for 26 days over a period of 2 months. Additionally, the employer some- times refuses or is unable to pay the day- labourer's wage. Labour disputes in Kamagasaki have increased markedly. But in order to earn money for daily food and accommodation, the day laborer must report to work every day, regardless of the conditions. As a result, the status of the homeless person and the active day laborer cannot be changed. Only a very few skilled, healthy and young labourers can get jobs regularly. Most unskilled, disabled and elderly labourers cannot get jobs. Now the labourers are not homeless temporarily, but permanently. Thus, they can be called the 'stagnant overpopulation' in the labour market, using Marx's terminology.

Internet Café Refugees

There were 25,296 homeless people nationally, according to the first national assessment on homelessness in 2003. Despite the fact that the majority of homeless persons lived in large cities (6603 of them were in Osaka and 5927 in Tokyo), every municipality had been classified as having some level of homelessness. The most popular places for homeless persons to sleep were parks (48.9%), riverbanks (17.5%), and streets (12.6%). Males made up the majority of those who were homeless. People who had been homeless for more than five years made up 24% of the population, with an average age of 55.9 years. This indicates that nearly a quarter had been without a home for an extended period of time. Sixty-four percent (64.7%) of those who were homeless worked, such as collecting trash for recycling. Nearly half of respondents (47.4%) reported having bodily problems, yet more than two-thirds (68.4%) of these complaints went untreated.

One reason for more homelessness in cities is that big cities like Tokyo,Osaka and Nagoya have day worker towns such as Sanya in Tokyo, Kamagasaki in Osaka and Sasha Jima in Nagoya, and many people are used to staying in these day worker towns for work at different construction sites. When these workers reached retirement age and Japan was severely impacted by the recession, they were unable to find new employment and were forced to spend their nights in flop houses in order to work in the shaky construction industry. If they lost their jobs, they would also lose their homes. Due to their structural weakness, they were more easily identified as homeless people. They are a part of the new underclass that has resulted from the economic and social reforms that were started six years ago by Junichiro Koizumi, who was the then Prime Minister. Young people are the biggest losers as a result of his zeal for the free market and cuts to public spending, which have increased the income gap. When Japan abandoned its egalitarian pay policy, the Organization for Economic Cooperation and Development was impelled to express its concern. According to the tax agency, the number of persons making less than a million yen (£4,300) a year increased by 16% to 3.6 million between 2001, when Koizumi took office, and 2005. In the last ten years, the number of households using welfare has increased by 66%, reaching one million, and the youth unemployment rate of 8.8% is double the national average.

Following the development of more reliable communication networks in Japan following the Great Hanshin Awaji Earthquake (also known as the Kobe Earthquake) in 1995, the Internet has become widely used. There are now locations all across the country where clients can access the Internet in a private room day and night. These Internet cafes are becoming increasingly popular as places to not only look for jobs but also spend nights on the town for approximately 2000 (£13 or $21) each night. Since the second half of the 1990s, Internet cafes have been a common form of accommodation for young individuals who were unable to find regular employment and middle-aged temporary employees who had lost their regular jobs. Due to their poor income and the requirement for a guarantor to rent a property in Japan, they are forced into this situation. The formal assistance provided under the Homelessness Act does not apply to these homeless people who frequent Net cafes. Their daily routines are erratic and unpredictable; they may spend some nights at Internet cafes, other nights in libraries or pachinko (Japanese slot machine game parlors), some

nights on trains, and other nights in 24-hour bookstores. Japanese cafes have transformed into makeshift homes for those who cannot afford to rent a home, including the unemployed and others, like Tanaka, who rely on daily contracts in the construction industry. 5,400 individuals who have been nicknamed "net cafe refugees" by the media live in cafes at least half of the time, according to a recent government poll.

Regarding those who live in temporary or insecure housing but are not considered to be formally homeless, a survey conducted in 2007 found that 60 000 people used internet cafes in Japan on any given night. Of these, 21,000 people had stayed there for at least three days in a row. These locations served as a permanent form of housing for an additional 5400 people. Males make up more than 90% of those staying at Net cafes, and the age distribution reveals two peaks: those in their 50s (26.3%) and those in their 20s (26.5%). Two-fifths (40%) of the 5400 people who regularly used Internet cafes had lived on the streets and led chaotic lives, bouncing between sleeping on the streets and staying in Internet cafes, fast-food restaurants, saunas, or other places with 24-hour access. In comparison to the estimated national average monthly income per Japanese household of Homeless People: Single Men in Japan 125 443 429 (£2808 or $4617), the average monthly income for these 5400 people is extremely low at 107 000 in Tokyo (£678 or $1114) and 83 000 in Osaka (£526 or $864).

The difficulties people have paying for rental housing is obvious if we compare this to the average monthly rents in these two cities, which are 54 161 in Osaka and 78 706 in Tokyo (Ministry of Internal Affairs and Communications, 2003).

Welfarism and Homelessness- Homelessness induced by globalisation has led to the emergence of new forms of political protest, expressive rather than collective reflect, scholars contend, the individualizing effects of neoliberal political technologies of governance which have emerged as a result of globalisation. These include the discoursee of jiko sekinin (self-responsibility) in welfare and security policy (Hook and Hiroko 2007; Arai 2005), the offshoring of risk from the social state to the individual subject, and the creation of a "volunteering subjectivity" through the development of associational life or civil society.

The structure of the Japanese welfare system is based on the Fukushi Roppô (Six Laws of Welfare):

1) Seikatsu hogohô (Livelihood Protection Law)
(2) Jidô fukushihô (Children's Welfare Law)
(3) Boshi fukushihô (Mothers' and Children's Welfare Law)
(4) Shintaishôgaisha fukushihô (Physically Handicapped Welfare Law)
(5) Seishinhakujakusha fukushihô (Mentally Handicapped Welfare Law)
(6) Rôjin fukushihô (Elderly Welfare Law).

In 2002, the government unveiled a comprehensive plan to address homelessness. They started a housing project to house the homeless who were camped out in parks and shelters and assisted them in finding employment after passing the first homeless law, the Law on Special Measures concerning Assistance in Self-

Support of Homeless. However, because of aging, this regulation was unable to solve the actual issue of the homeless. As a result, the government started a program to house the homeless in low-rent flophouses and apartments while also paying welfare to them. This effort involved a large number of NGOs. As a result, there were significantly fewer homeless people living on the streets in 2021—3,824—6.6 times fewer than in 2003—with 990 in Osaka Prefecture and 889 in Tokyo. The homeless problem completely vanished from the streets of Japan's cities, returning to being invisible. The government's welfare program aimed to reduce poverty, stop social isolation, and reintegrate people into formal spaces through preventing social exclusion. However, in Japanese welfare system, formality and informality intersect, and people are assigned to and move back and forth between these spaces. Thus, as the number of homeless who became unable to work increased with age, homelessness became a serious welfare issue. Currently, there is a gray spatialization of formal space occurring, in which some homeless people reject the requirements of the shelter and their obligation to labour. They are prohibited from entering shelters, and even if they are, they are expelled when they break the regulations.

Some homeless people struggle to adjust to group living. Others reject receiving aid because they do not want to be taken care of by the state. They do not fit in there, even if they receive aid and move into boarding houses or flats. Because there is no one to talk to, it is a lonely life. Low-rent dwellings have become suburban as a result of gentrification (process whereby the character of a poor urban area is changed by wealthier people moving in, improving housing, and attracting new businesses, often displacing current inhabitants in the process). There are no jobs, single-person housing options, or social networks in the suburbs. As a result, tenants are moving back into the city's core and becoming homeless. In the end, they return to shelters, flophouses, and flats where they deteriorate physically and mentally before passing away alone. Or they pass away by themselves in hospital beds. Or they abandon the flophouses, apartments, and shelters and perish alone on the streets. In this way, homeless people who are cast aside by society end up living in shelters, flophouses, apartments, and on the streets. The homeless who are not allowed to work or live in housing and are just nominally included in the welfare system reach this stage. For the homeless in Japan, developing personal connections, providing for one another, and passing away under the care of friends and peers is merely a dream. Foreign workers and young people who are temporarily homeless compete for even entry-level positions. The role of the yoseba is further constrained as work camps increasingly regulate the supply and flow of the low-skilled labor force.

Deyosebisation and Mental Health

Deyosebisation which has been exacerbated by globalisation resulting in homelessnes of the hiyatoi has also had serious ramifications on their mental health.There are many people who have mental disorders and disabilities. One psychiatrist, who works at an organization to help homeless people in Ikebukuro, Tokyo, conducted research on the mental health of the homeless in Ikebukuro. He estimates that 30% of the homeless have modest disability and 60% have mental illnesses. They frequently find it too challenging to express their demands and properly complete a form when the welfare system necessitates that applicants

register on their own. Even when individuals appear to want aid, they are unable to obtain it until they self-apply for public assistance. Additionally, they are more exposed. Some companies specifically target the homeless. These are what are referred to as "poverty businesses". They provide a house to them with sugarcoated words and take away their welfare checks from the government as long as possible. People who use such outrageous services are deprived of public assistance and placed under their control until they run away from such companies.

After such experiences, the homeless become more distrustful of others. They may think they should manage to live without any help. Ikizurasa—the pains or difficulties of life—is the word activist Amamiya Karin uses to capture the sensory nature of precarious lives of the hiyatoi in contemporary Japan. She activates particularly for the workers who are unemployed and underemployed in irregular jobs (hiseikikoyō), for whom it is not only the material insecurities of uncertain work but the existential nature of social living that is every bit as, if not more, painful. Ikizurasa (the pain of life) refers to a condition that has spread in recessionary Japan over the past two decades and is evidently due to unemployment and underemployment and the associated social malaise. But ikizurasa also indexes a particular relationship, and alienation, between "human time and capitalist value. The nojukusha's sense of self is crippled by the ambiguity of work and life rhythms (never sure whether they could find work or keep it even if they did) and the estrangement from ongoing human relations and recognition (shonin) (not called by name at work and treated as disposable labor).

A lot of money is also spent on alcohol in the yoseba, though there are sturdy minorities who neither drink nor gamble. Drinking practices also express solidarity and present orientation. The copious American sociological literature on skid row includes numerous references to "bottle gangs," semi-formal groups of drinkers who contribute to the costs of buying a bottle and among whom some kind of record is kept to ensure that participants get a fair deal.

Role of Buddhism and Social Activism- Buddhist priests conduct burial rites for those who have died while living on the streets and are homeless. When a particular NPO asked some priests to sing and pray for them one summer, that is how the group got its start. Obon is the name for this time of year, when it's thought that those who have passed away return to see their loved ones in this world. Priests have to confront the issue that homeless people have nowhere to go after they pass away through these memorial services. Because usually they are already cut off from their family relationships, even when the families are alive, they cannot be buried in their family graves. The priests felt these people need a grave site where everyone who has a relationship with them can pray and recall them. Now there is a grave site for those who have been abandoned by relatives or society in the temple. It is called yui-no-haka. Haka means "grave", and yui means "tie" or "connection". This priest set up such as grave site in the hope that homeless people would be able to maintain ties and connections to their friends. A Buddhist group called Hitosaji (spoonful) has been feeding the homeless for many years.

NGOs are taking action to assist homeless populations in many parts of Japan in reaction to such a dire housing situation. Good examples include Hot Pot (in Saitama), which aims to promote the independence of homeless people by using vacant private houses in the local area, acting as both guarantor and intermediary between the private landlord and formerly homeless tenant. Supported House, a cheap lodging house with an independent living support service in Kamagasaki,Osaka. Another excellent example is the Kita-Kyushu Homeless Support Organization, which works closely with the local government to care for the community's homeless residents over the course of their life. Each of these organizations seeks to establish a comprehensive multiagency system to assist the homeless while including the larger community. If the issue of homelessness in Japan is to be successfully addressed, even though these interventions are seen as desired models, such programs must be more widely available from both NGOs and the government.

Theoretical Approach- This paper has used the theoretical framework of deyosebisation (Aoki,2003), to analyse how the increasing unemployment of the hiyatoi (day-labourers and casually employed unskilled workers), has forced a vast majority of them to become nojukusha (persons who sleep outside, people with rough sleep), making their lives further precarious. Using this theoretical framework, this paper has also made a cogent effort to analyse the impact of globalisation and how it has further exacerbated the process of deyosebisation of the hiyatoi in contemporary Japan. The failure of the state's welfare measures in ameliorating the impact of increasing unemployment and resultant homelessness of the hiyotai has led to the emergence of the phenomenon of "internet café refugees", which has also been analysed in this paper.

Conclusion- It is obvious that the Japanese socioeconomic system, in which most people get housing through their employment, is largely to blame for the country's current homelessness situation. Many people, particularly older male workers, have lost their employment as a result of the economic uncertainty brought on by globalization, and with it their homes. In order to secure a permanent residence in Japan, one needs a guarantor, a steady source of income, and a sizeable initial payment for a deposit and rent. Furthermore, because of the decline in informal social support, it is increasingly difficult for homeless persons to acquire guarantors because many of them no longer have close relationships with others. In Osaka, the number of homeless individuals has increased due to deyosebization and unemployment. Second, governments' social policies regarding employment, housing, and social welfare have not yet been sufficient to help the homeless or to reduce the number of people who are homeless. Thirdly, although their power to do so is gradually eroding as a result of globalization, associate organizations like businesses and families/relatives have kept people from being homeless.

Public (social) housing must be added to Japan's extremely pricey private housing market to accommodate individuals who cannot afford to live in the private sector. However, the number of new public housing units being built has been steadily declining in Japan for a while, and those applying for what is presently available must fall within the 25% of households with the lowest incomes. Furthermore, only families with elderly or disabled members are permitted to apply for public tenancies; all other single households are ineligible.

References

[1]. Aoki, H. (2003, February). Homelessness in Osaka: Globalisation, Yoseba and Disemployment. Urban Studies, 40(2), 361–378.

[2]. Aoki, Hideo. 2000. Japan's Underclass: Day Laborers and the Homeless, Trans Pacific Press

[3]. Waibel, M. (2016, February 11). Urban Informalities: Reflections on the Formal and Informal (C. McFarlane, Ed.). Routledge.

[4]. Alsayyad, N., & Roy, A. (Eds.). (2003, January 1). Urban Informality: Transnational Perspectives from the Middle East, Latin America, and South Asia.

[5]. Gill, T. (2001, January 11). Men of Uncertainty: The Social Organization of Day Laborers in Contemporary Japan. Suny Press.

[6]. Steven, Rob. Classes in Contemporary Japan. Cambridge u.a.: Cambridge Univ. Pr., 1983.

[7]. Stevens, C. S. (1997, March 1). On the Margins of Japanese Society: Volunteers and the Welfare of the Urban Underclass. Routledge.

[8]. Hasegawa, M. (2006, April 26). We Are Not Garbage!: The Homeless Movement in Tokyo, 1994-2002.

[9]. Shiro, O. (2005, September 15). A Man with No Talents: Memoirs of a Tokyo Day Labourer (E. Fowler, Trans.).

[10]. Rebuilding Human Bonds Amidst Japan's Disconnected Society PART IV. (2020, October 12). https://jneb.net/activities/dyingcar/rebuilding-human-bonds-amidst- japans-disconnected-society/part-iv/

[11]. Apostolidis, P. (2019, January 17). The Fight for Time: Migrant Day Laborers and the Politics of Precarity.

[12]. Hippo, Y. (1992) Theory of Construction Labor in Japan: History, Reality and Foreign Laborer. Tokyo: The Ochanomizu Sho

[13]. Nakane, M. (1999) Yoseba as the underclass and Kamagasaki as Yoseba, in: H. Aoki (Ed.) Open Up the Space: The Sociology of Yoseba and Homelessness , pp. 199-223. Kyoto: The Shôraisha.

[14]. Kitagawa, Yukihiko. 2021. "Homeless Policy as a Policy for Controlling Poverty in Tokyo: Considering the Relationship between Welfare Measures and Punitive Measures," Critical Sociology, 47(1): 91-110

[15]. Fowler, Edward. San'Ya blues: Laboring life in contemporary Tokyo. Ithaca, NY: Cornell University Press, 1996.

[16]. Vij, Ritu. "Time, Politics and Homelessness in Contemporary Japan." ProtoSociology 29 (2012): 117–42.

[17]. Allison, Anne. Precarious Japan. Durham: Duke Univ. Press, 2013.

[18]. Harvey, A.; Slodkowski, A. 2014. Foreign recruits discover dark side of Japan's 'training programs', Reuters http://www.japantimes.co.jp/news/2014/06/12/national/socialissues/interns-abused- labour-crisis-grows/#.U5v9SZSSyaE.

[19]. Tsuda, T. 1999. 'The permanence of "temporary" migration: The "structural embeddedness" of Japanese-Brazilian immigrant workers in Japan' The Journal of Asian Studies, 58(3), 687–722.

[20]. Cooke,Fang Lee;Brown,Ronald.2015."The Regulation of Non-Standard Forms of Employment in China, Japan and the Republic of Korea." International Labour Office, Geneva. https://doi.org/10.1163/2210-7975_hrd-4022-2015054.

Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 4
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

Prevalence of Ixodid Ticks in Small Ruminants in and Around Jimma District

Mujahid Jewaro, *Kufa Mustefa
Shashemene city Agricultural office Ethiopia

Article Info

Publication Issue :
July-August-2023
Volume 6, Issue 4

Page Number : 41-51

Article History
Received : 01 Aug 2023
Published : 29 Aug 2023

ABSTRACT - A study on small ruminants tick was conducted in and around Jimmatown, Southwest Ethiopia, from November 2017 to April 2018 with the objectives of determining the tick infestation prevalence and identifying the common genera of hard ticks in indigenous breeds of small ruminants (sheep and goats). The study was conducted using cross-sectional design to assess the adult ticks attached on study animals. A total of 350 animals (299 sheep and 51 goats) were examined. From the total examined animals, 118 of them were found to harbour different tick genera, giving an overall prevalence of 33.7% (95% CI: 26.7- 38.9). The prevalence of tick infestation in goats and sheep was found to be 35.1% and 23.1 %, respectively. The prevalence of tick infestation between two age groups of animals were statistically insignificant (P>0.05). However the prevalence was higher in young (53.3%) than adult (29.2%). The prevalence found to be statistically insignificant within species of small ruminants (P>0.05). In this study , six genera of ticks were identified, with the following abundance among tick infested animals: Hyalomma(36.4%), Amblyomma(34.7%), Boophilus(22%), Ixodes6.7%) , Haemaphysalis(4.2%), and Reipicephalus (1.6%).The Preferred attachment sites for most of tick genera identifiedwere internal part of legs, scrotum/udder and anogenital in decreasing order. In conclusion small ruminants ticks infestation is highly prevalent in the study area. Therefore, attention should be given to the control and prevention of ticks and further study should be done to assess the seasonal dynamicity of ixodid ticks and tick borne diseases of small ruminants in the study area.

Keywords : Genera, Goat, Hard tick, Jimma, Sheep, survey

Introduction – Ethiopia is endowed with a very large and diverse livestock resource including sheep and goats, the country do have 29.33 million sheep, and 29.11 million goats (CSA, 2016).These small ruminants play a

Copyright © 2023 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)** which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

significant role in socio- economic life of the people of Ethiopia (Minjauwet al., 2003).Sheep and goats account for 40% of cash income and 19% of the household meat consumption (Zelalem and Fletcher 1993).Owing to their high fertility, short generation interval and adaptation even in harsh environments, sheep, and goats are considered as investments and insurance to provide income to purchase food during seasons of crop failure and to meet seasonal purchases such as improved seed, fertilizer, and medicine for rural households.Hides and skins accounts for 12-16% of the total value of exports in Ethiopia (Minjauwet al., 2003a).

The current utilization of hides and skins in Ethiopia is estimated to be 45% for cattle hide, 75% goatskin, and 97% sheep skin with expected off take of 33, 35, and 7% for sheep, goats, and cattle, respectively. However, in recent years, this rank has been relegated to fifth level mainly because of rejection and down grading inflicted on hides and skin defects mainly due to infestation by external parasites (Kassa, 2006).Among the ectoparasitic infestations, ticks remain one of the most economically important parasites of livestock's in tropical and subtropical countries (Jongejan And Uilenberg, 1994). Ticks rank second to insects as vectors of transmissible diseases in man and animals (Opara2016 and Ezeh, 2011). (Bowman et al., 1996) estimated.

more than 80% of world livestock population was infested by ticks, which were known to transmit viral, bacterial and protozoan pathogens causing Tick Borne Diseases (TBD) such as hemorrhagic fever, anaplasmosis, theileriosis and babesiosis (Rajput et al., 2006). 19Production losses due to ticks and tick-borne diseases (TBD) around the globe were put at US$ 13.9 to US$ 18.7 billion annually (De Castronet al., 1997).

In Ethiopia there are a lot of reports on the status of hard tick in small ruminants in different part of the country. For example several species of ticks belonging to genus Amblyomma, Boophilus,Rhipicephalus, Hyalomma and Haemaphysalis have been reported. Among these tick genera, the main ticks affecting small ruminants reported in Ethiopia were Amblyomma (40%), Boophilus (21%),Haemaphysalis(0.5%), Hyalomma (1.5%), and Rhipicephalus (37%) in different part of Ethiopia (Jaferet al.,2017), (Asmareet al .,2012), (Serste and Wossen 2007).There are currently no studies on the prevalence and genera of ticks commonly affecting sheep and goats production in and around Jimma town, despite the fact that Jimma area is endowed with favorable weather condition suitable for the proliferation of ticks, thus the objectives of the study were:

- To determine the prevalence of tick infestation in small ruminants in the study area
- To identify the genera of ixodide ticks affecting sheep and goats

II. MATERIALS AND METHODS

2.1. Description of study area

The study wasconducted from November 2017 to April 2018at Jimma town of Oromia Regional State south-western Ethiopia and jimmaUniversity College of agriculture and veterinary medicine (JUCAVM). Jimma town islocated at 355km south-western of Addis Ababa, liesbetween 3600C 10′ E longitudes and 70 40′ N latitude an elevation ranging from 880 to 3360 meters above sealevel (JZMSR2004). Very currently Jimma Zone is divided in to 17districts (hosting a total population of over 2.4million, (CSA2008). The area is characterized by a humid tropicalclimate of heavy annual rainfall that ranges from 1200-2000highlands (15%), midlands (67%) and lowlands (18%) mm per year. About 70% of the total annual rainfall is received during rainy season, which lasts from the end of May to early September. The mean annual maximum and minimum temperature ranges from 25°C-30°C and 7°C-12°C, (OPEDJZ,2002).

2.2. Study population

The study population comprises of local breeds of sheep and goats managed under extensive grazing system of both sex (male and female) in different Kebeles of Jimma town

2.3. Study Design

The study design was cross-sectional study, which was to assess the adult tick present in the bodyof small ruminants in the area

2.4. Study Methodology

Presence and absence ticks in the body of examined was done on the field, then adult ticks collection was done for identification of tick genera infesting sheep and goats.

2.4.1 Tick collection and identification

Adult ticks were collected from whole body regions of small ruminants into universal sample bottle containing 70% ethanol (Okello-Onenet al., 1999a and Walker et al., 2003). The body regions used for collections were head, neck, brisket, belly, udder/ scrotum, Anogenital region, leg and tail (Kaiseret al., 1982). Ticks were removed from the host skin whilst retaining their good condition for identification using good quality steel forceps. The collected adult ticks from each body regions were kept separately for identification in separate sample bottles. Then ticks transported to Jimma University, school of veterinary medicine, Veterinary parasatology laboratory. And identified using stereomicroscope following,in the laboratory the ticks collected were examined by seterio microscope. The morphology of the ticks was studied. Identification of the different genera of the ticks was accomplished with the help of the anatomical and morphological characteristics as described by (Okello-Onenet al., 1999a) and (Walker et al.,2003). During the collection time species (ovine/caprine), sex, age (young and adult) and body condition (Poor, Medium and Good) of animals were recorded.

2.5. Sampling and sample size

Examined animals were selected by systematic random sampling technique for ticks collection and identification from eight half-body regions of sheep and goats: Head, neck, Brisket, Belly, Udder or Scrotum, Anogenital, Leg and Tail Since there was no study conducted so far in Jimma town to determine the prevalence of tick infestation of small ruminants, as well as to get the maximum sample size (384), we considered an estimated prevalence of 50%, with 95% confidence interval and 5% absolute level of precision were considered according to the formula given by (Thrusfield 2005).

$N= (1.96)^2Pexp(1-Pexp)/d^2$

Where: N=Sample size, Pexp= Expected prevalence (50%) and d = desired level of precision (5%). However a total 350 (299 sheep and 51 goats) animals were examined. A greater number of sheep was sampled because of their predominance in the area

2.6. Data Management and Analysis

The information obtaining from clinical examination, laboratory test and observation was entered on spreadsheet of Microsoft Excel. The data was screened for errors and coded before subjected to statistical analysis. Descriptive statistics used to analyze the data and percentages and tables were used to describe the results. To test the various risk factors associated with tick infestation, Chi-square test was used by using the Statistical Package STATA 11. In all the analyses, confidence level was held at 95% and $p< 0.05$ was considered as significant.

III. RESULTS

3.1. Overall prevalence of ectoparasites

From 350 small ruminant examined, 118 were infested by one or more genera ticks with an overall prevalence of 33.7% (95% CI: 26.7- 38.9).The overall tick infestation prevalence recorded in the male and female small ruminants of both species was 34.2% and 33.1% respectively, with no statistical significance variation (Table). Higher the tick infestation rate was observed in young (53.3%) small ruminants than adult (29.2 %) small ruminants, however the difference was not statistical significance (P > 0.05)

The overall prevalence of tick among sheep and goats were 35.1% (105/299) and 23.5% (12/51), respectively and nostatistical significance variation was observed (Table1).

Table 1: Overall small ruminant's prevalence of tick infestation by sex, age and species ofand animals examined

Variable	No. of examined	No positive	Prevalence (%)	95%CI	X^2	P-value
Sex						
Male	184	63	34.2	27.3- 41.6	0.47	0.827
Female	166	55	33.1	26.1- 40.8		
Age						
Young	13	7	53.3	25.1- 80.7	2.44	0.118
Adult	337	111	32.9	27.9- 38.2		
Species						
Ovine	299	105	35.1	29.7- 40.8	2.77	0.09
Caprine	51	12	23.5	12.7- 37.5		

4.2 Prevalence of tick genera in small ruminants (sheep and goats)

During the study period six genera of different types of ticks were identified which are Amblyomma, Hyalomma, Boophilus, Haemaphysalis, Ixodesand Rhipicephalus.The overall prevalence the six genera of ixodide ticks among the small ruminants is depicted in table 2: The highest infestation was caused by Hyalomma (12.3%)followed by Amblyomma (11.71%),Boophilus(7.43%),Ixodes(2.3%),Haemaphysalis(1.2%) and Reipicephalus.(0.57%).

Table2: The overall prevalence of genera of ticks identified in small ruminants (n= 350)

Genera of ticks	**Number of**	**Prevalence (%)**	**95% CI**	**Chi-square, p-value**

	positive animals			
Amblyomma	41	11.71	8.8- 15.5	
Boophilus	26	7.43	4.5- 10.7	
Haemaphysalis	5	1.2	0.5- 3.3	75.4, 0.000, Df* = 5
Hyalomma	43	12.3	9.1- 16.2	
Ixodes	8	2.3	0.9- 4.4	
Reipicephalus	2	0.57	0.06- 2.1	

- Df : Degree of freedom

1) 4.3. The proportion of genera of tick infestation in infested animals

Out of all infested animals (n=118), the proportion of infection percentage by the six genera of tick indentified and mixed infestation with more than one tick species is depicted in figure 4, 14.5% of infested animals were found to have a mixed infestation with more than one tick genera (figure 4).

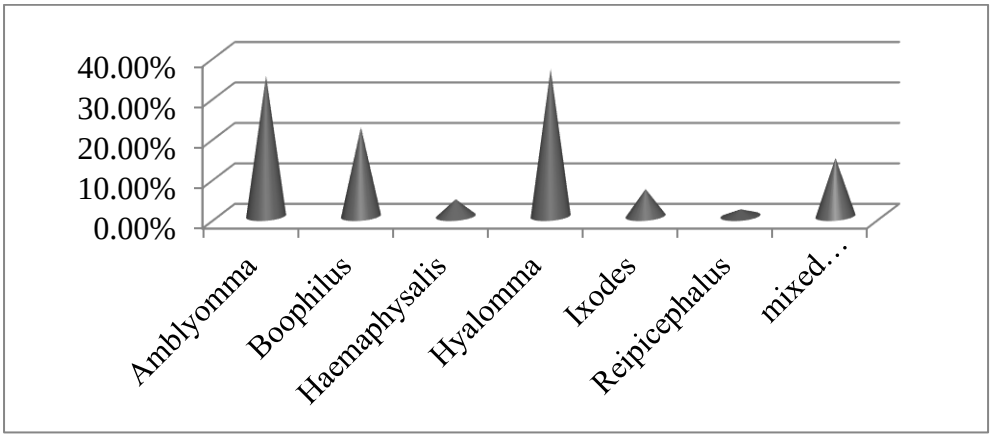

Figure4: Relative abundance of tick genera during the study period among infested smallruminants (n=118)

2) 4.4. Assessment of genera of tick attachment sites

Each species of tick consistently favored various body regions of small ruminants (sheep and goats), but the preferences were stronger in some genra than others. The observed proportion of tick genera attachment sites during this study was summarized and shown on table 3.The most preferred predilection sites of all *Amblyomma*genera identified during this study was legs followed by scrotum, udder, anogenital, tail and head in decreasing order of preference. *Boophilus preferred* attachment sites in decreasing order were legs and brisket. During this study periods identified *Hyalomma*species were found primarily attached to legs and secondarily on scrotum or udder*Haemaphysalis and Reipicephalus*mainly attached on legs(Table3).

Table3.Summary of the attachment sites percentages of the most common tick genera among infested small ruminants in the study areas

Body regions						
Tick genera	Head Including ear	Brisket	Scrotum/ udder	Tail	Anogenital	Leg+interdigital space
Amblyomma(n=41)	1(2.4%)	-	7(17.1%)	3(7.3%)	4(9.7%)	25 (60.1%)
Boophilus (n=26)	-	3(11.%)	-	3(11.5)	2 (7.6%)	18(69.2%)
Haemaphysalis (n=5)	-	-	1 (20%)	-	1(20%)	3 (60%)
Hyalomma (n=43)	1(2.3%)	2(4.6%)	3(6.8%)	-	1(2.3%)	37(86%)
Ixodes (n=8)	1(12.5%)	-	1(12.5%)		1(12.5%)	5(62.5%)
Reipicephalus(n=2)	-	-	-	-	-	2 (100%)

DISCUSSION

The overall prevalence of tick infestation (33.7%) reported in this study is relatively moderate when compared to other reports from other areas of Ethiopia, for example the current finding was in agreement with the previous overall tick infestation prevalence report of 31.4% in and around Bahirdar town (Tesfayeet al., 2012). However a higher overall prevalence small ruminant tick infestation were reported elsewhere in this country; for instance 79.7%(Kedir and Petrose, 2015), 76.5% (Fufaet al., 2012) and 72.4% (Abebeet al., 2017) were reported in and around Bedele town, Fafen zone in Ethiopia Somali region and in and around Dire Dawa town. Relatively lower overall small ruminate tick infestation, which is 20% was reported in and around Gonder town (Fentahunet al., 2012) when compared with our finding. The difference in the prevalence might be due to the geographical difference, breed difference of the study animals and season of the study period.

The overall prevalence recorded in sheep (35.1%) and goats (23.5%). this study was close to the study conducted in and around Bahir Dar (Asmareet al., 2012)recorded an over prevalence of37% in sheep and 23.9% in goats, similarly an overall prevalence of 21.2% and 17.1% in sheep and goats were recorded in and aroundGonder town(Fentahunet al., 2012). Additionally (Yacobet al., 2008) reported very similar overall tick infestation prevalence in sheep (31.7%) and goat (18.3%) in WolayitaSodo,

On the contrary the overall tick infestation rate recorded in sheep and goats in this study was lower than the reports done by (Seyoumet al., 2015) n Miesso district, Western Hararghe, who recorded a prevalence of 87.5 % (goats) and 89.9 % (sheep), (Eyob and Matios2014) recorded a higher prevalence of 97.58% (goats) and 69.86%(sheep) in Dhas district of Borana pastoral area, Southern Rangelands of Ethiopia. Additionally 66.12% (goats) and 80.30% (sheep) over all prevalence was recorded in Bedelle district, Oromia Region, Ethiopia (Fufaet al., 2012). Environmental variations and differences in the time of year when the study was conducted could also contribute to differences in the prevalence of tick infestation in various areas of the country as temperature and relative humidity are the major ecological determinants for the reproduction and growth of tick populations (Latif and Walker, 2004).

The overall prevalence of tick in different age and sex groups of examined small ruminantwas show no statistical significant variations ($P > 0.05$). Even if there was no statically significant variations in young and adult animals examined in this study, the recoded prevalence in young animals (53.3%) seems large when compared with adult animals (32.9%). in contrary to this report (Fentahunet al., 2012 and Abebeet al., 2017)observed asignificantly higher prevalence ($P < 0.05$) in adult animals in their study in and around Gonder and Dire Dawa towns respectively.

The overall prevalence between male and female was statistically insignificant ($P > 0.05$), this finding is in agreement with the study conducted in three districts of Fafen Zone in Somali Regional State, Eastern Ethiopia (Kedir and Petros, 2015). On the contrary the current findings, (Abebeet al., 2017) observed a statistically significant high prevalence in female small ruminants in their study. This study revealed the presence of six genera of hard ticks namely: Amblyomma, Hyalomma, Boophilus, Haemaphysalis, Ixodesand Rhipicephalus.These all indicates that the bionomic situation of the study area is favorable for the successive perpetuation of the pathogens transmitted by ticks and for their subsequent transmission to susceptible host.

In the present study, hyalommahad the highest frequency among the collected tick species in small ruminant (sheep and goats), the finding is in agreement with the previous studies done in different areas of Ethiopia (Kedir and Petros; 2015; Abebeet al., 2017). The least frequent genera of tick during the study period was Rhipicephalus(0.57%), similar find was reported in Arsi Area (Hailegebrielet al., 2015).In general the finding of

different genera of ticks in and around Jimma indicates the epidemiological significance in transmission of tick borne diseases such as anaplasmosis, babesiosis and ricketsial diseases.

The most preferred predilection sites of all Amblyommagenera identified during this study was legs followed by scrotum or udder, anogenital, tail and head in decreasing order of preference. Boophiluspreferred attachment sites in decreasing order were legs and brisket. During this study periods identified Hyalommaspecies were found primarily attached to legs and secondarily on scrotum or udder.HaemaphysalisandReipicephalusmainly attached on legs.The result of this study showed that the predilection sites of ticks over the body of small ruminants was high on legs, specifically in the interdigitalspaces between hoof, this impair productivity and mobility of the small ruminants (Sheep and goats).

CONCLUSION AND RECOMMENDATIONS

From this study result it is possible to conclude that the overall prevalence of tick infestation in sheep and goats is relatively high. Sex, age and species of small ruminant were not principally determinants in the overall tick infestation prevalence in the study area. Among the tick genera identified in the study areas the most abundant were Hyalomma,Amblyomma and Boophilus.The Preferred attachment sites for most of tick genera identifiedwere internal part of legs, scrotum/udder and anogenital in decreasing order. Therefore the following recommendations were put forward

- Strategic tick control: Application acaricides aimed at reduction of ticks population based on information about their seasonal activity.
- Integrated tick control: These encompasses biological, chemical and ecological control methods, should be used
- Extension work: Educating animal owners on the problems of tick, and the different control methods, which can be available in their areas. Successes of ticks control generally associated with good extension work.
- Tick-borne diseases assessment: Importance, distribution, and seasonal prevalence of tick borne survey should be conducted.

REFERENCES

[1]. Abebe, H., Ahmed, J., Wendemagegn, D., Tsehay, A., Silesh, S., &Abebe, H.(2017):Prevalence Of Tick Infestation On Small Ruminants In And Around Dire Dawa, Eastern Ethiopia Journal of Parasitology and Vector Biology, 9(4), pp.27- 33.

[2]. Asmare, A, Kassahun, A.&Fentahun, T.(2012). Occurrence of small ruminant ectoparasites in and around Bahir Dar, northwest Ethiopia.Advances in Biological Rese, 6(5), 170-176.

[3]. Bowman, D. M. J. S. (1996): "Diversity patterns of woody species on a latitudinal transect from the monsoon tropics to desert in the Northern Territory, Australia." Australian Journal of Botany44.5 571-580.

[4]. Central Statistical Agency (CSA) (2016): Federal democratic republic of Ethiopia.

[5]. Central statistical agency. Agricultural sample survey,Volume II, Report on livestock and livestock characteristics. Statistical bulletin 583, Addis Ababa, Ethiopia.

[6]. CSA, 2008. (Central Statistics Authority) (2008) Central Statistics Authority of the Federal Democratic Republic of Ethiopia.

[7]. De Castro, J.J., (1997): Sustainable tick borne diseases control in Western Ethiopia. J. S. Afr. Vet. Assoc.,71(4): 240-243.

[8]. Eyob, E., &Matios, L. (2014). Preliminary survey on the distribution of Ixodid ticks in small ruminants of dhas district of borena pastoral area, Southern Rangelands of Ethiopia. Advanced in Biological Research, 5, 87–91.
[9]. Fentahun, Tewodros, FasilWoldemariam, MershaChanie, and MaledeBerhan. (2012):
[10]. Prevalence of ectoparasites on small ruminants in and around Gondar Town." American-Eurasian Journal of Scientific Research 7, no. 3 106-111.
[11]. Fufa.,Abunna., Tura and. J., and Regassa, A. (2012b) Status of tick's infestation in small ruminants of Bedelle district, Oromia Region, Ethiopia. Global Veterinaria.8(5): 459-462.
[12]. Hailegebriel, Bedada, TerefeGetachew, and HailuTolossaYacob., (2015): "Current status of ectoparasites in sheep and management practices against the problem in ectoparasites controlled and uncontrolled areas of Arsi zone in Oromia region, Ethiopia." Journal of Veterinary Science and Technology 6.Special Issue.
[13]. Jafer Ahmed, DanelWendemagegn, Abraham Tsehay, Samson Silesh, and HenokAbebe.(2017). "PREVALENCE OF TICK INFESTATION ON SMALL RUMINANTS IN AND AROUND DIRE DAWA, EASTERN ETHIOPIA."International Journal of Research -Granthaalayah, 5(5), 326-336.
[14]. Jongejan, F. and Uilenberg, G. (1994): Ticks and control methods. Ectoparasites of animals and control methods.Rev. Sci. tech. Off. Int. Epiz.,13(4),pp.1201- 1226.
[15]. Jongejan,F.and Uilenberg,G.(2004):The Global Importance of Ticks.Parasitology,129,S3-S14.
[16]. JZMSR (Jimma Zone Meteorology Station Report), (2004): Ten year's climate data.JZMS. Jimma, Ethiopia,.pp: 36.
[17]. Kaiser MN, Sutherst RW, Bourne AS (1982) Relationship between ticks and zebu cattle in southern Uganda. Trop Anim Health Prod 14:63–74
[18]. Kaiser, M.N, 1987. Ethiopia report on tick taxonomy and biology, AG; DP/ETH/83/23 consultant report- FAO of the United Nations pp 92.
[19]. Kassa, B. (2006): 'Cockle, manage and pox: Major threats to the leather industry in Ethiopia.Ethiopian leather industry: Perseverance towards value addition', Proceedings of the National Workshop, AddisAbaba, Ethiopia, December 14–15, 2006. Pp: 71–92.
[20]. Kedir Mohammed and PetrosAdmasu (2015): Prevalence of Ixodid Ticks in Small Ruminants in Selected Districts of Fafen Zone, Eastern Ethiopia European Journal of Applied Sciences 7(2): 50-55.
[21]. Minjauw, B., and McLeod, A. (2003a): Tick borne diseases and poverty. The impact of ticks and tick borne diseases on livestock owners in India and Eastern health program center for tropical veterinary medicine, University of Edinburgh, UK.Pp: 24-57.
[22]. Okello-Onen, J.; Hassan, S.M. and Essuman, S. (1999a): Taxonomy of African ticks, an identification manual. International Center for Insect Physiology and Ecology press, Nairobi, Kenya, pp.1-124.
[23]. Opara, M. N. O., Opara, M. N., Nwachukwu, M., &Ezeh, N. O. (2016).Ixodid ticks of cattle in Borno and Yobe states of northeastern Nigeria: breed and coat colourpreference. Animal Research International, 8(1).
[24]. OPEDJZ (Office of Planning and Economic Development for Jimma Zone), (2002): StatisticalAbstract.Jimma, Oromia, Ethiopi
[25]. Sertse, T. and A. Wossene, (2007): A study on ectoparasites of sheep and goats in eastern part of Amhara region, Northeast Ethiopia. Small Ruminant Research, 69: 62-67.
[26]. Seyoum, Z., Tadesse, T., &Addisu, A. (2015): Ectoparasites prevalence in small ruminants in and around Sekela, Amhara Regional State, Northwest Ethiopia. Journal of veterinary medicine, 2015.

[27]. Tesfaye, D., Assefa, M., Demissie, T., &Taye, M. (2012): Ectoparasites of small ruminants presented at Bahir Dar Veterinary Clinic, Northwest Ethiopia. African Journal of Agricultural Research, 7(33), 4669-4674.

[28]. Thrusfield, M. (2005): Veterinary Epidemiology, Second Edition. U.K: Blackwell .Science Ltd. W.B. Sounder Company. Pp: 1-78.

[29]. Walker A, Bouattour A, Camicas J, Estrada-Pena A, Horak I, Latif A, (2003): Ticks of Domestic Animals in Africa: . Bioscience Report, Edinburgh. 1-221

[30]. Yacob, H.T., A.T. Yalow and A.A. Dink, (2008): Ectoparasites prevalence in sheep and in goats in and around WolaitaSoddo, Southern Ethiopia. American-Eurasian Journal of Agriculture and Environmental Scientific Research, 159: 450-454.

[31]. Zelalem, A., and Fletcher, I., C., (1993): Small ruminant productivity in the central Ethiopian mixed farming system. In proceedings of the 4th National Livestock Improvement conference, 13–15 November IAR, AddisAbaba, Ethiopia.

Annexes

Annex 1 : Sample collecting format

Animal no	Animal Ssp	Breed	Sex	Age	Site of adult tick	Adult tick	TickSpp	Lab. Result

Annex 2: Estimated age for sheep and goats with different numbers of erupted permanent incisors

No. of permanent incisors	Estimated age range	
	Sheep	Goat
0 pair	Less than one years	Under 1years
1 pair	1-1½ years	1-2 years
2 pair	1½-2years	2-3 years
3 pair	2½-3years	3-4 years
4 pair	More than 3 years	More than four years
Broken	Aged	Aged

Source :(vatta*et al.*, 2006)

Annex 3: Tick identification procedure

1. Ticks were removed from host skin carefully, not to damage the mouth parts, horizontally to the animal.

2. Code is given for ticks collected from each body regions with respect to date, site of attachments, their respective sex, age and breedof the animal.
3. The sample was put in universal bottle containing 70% ethanol and then it was transported to regional veterinary laboratory for identification purpose.
4. Ticks were identified to the genera and species level using stereomicroscope based on tick identification keys of (Kaiser, 1987 andMethyscae 1987).
5. Ticks were usually identified by the shape and length of capitulam, the colour of the body, the shape and markings on the scutum, host preferences and location on the host. Male and unengorged female ticks were easier to identify than engorged female ticks (Hendrix, 1998).

Annex : 4 Materials General Equipment

- ✓ White coveralls
- ✓ Boots,
- ✓ Datasheet
- ✓ Bag transporting tick samples
- ✓ Pencils and permanent marker pens for collection vials
- ✓ Thermometer (preferably digital)
- ✓ Mobile phone (optional)
- ✓ Forceps
- ✓ Magnifying glass to see ticks easier (optional)
- ✓ Garbage bags (to contain used drag cloths, coveralls, etc.

DECLARATION

I, the under signed, declare that the information presented here in my thesis is my original work, has not been published and not under consideration of publication in any journals and that all sources of materials used for this research have been duly acknowledged

Name: Mujahid Jewaro andKufa Mustefa

शोधशौर्यम्

Publisher

Technoscience Academy
(The International open Access Publisher)
Website : www.technoscienceacademy.com

Email: editor@shisrrj.com